अवमूल्यन
एवं भारतीय अर्थ-व्यवस्था पर उसका प्रभाव

लेखक

श्रीसुधाकान्तमिश्र, एम० ए०, डी० फिल्

प्रस्तावना

श्रीप्रयागदास हजेला, एम०ए०, डी० लिट्०

रीडर, अर्थशास्त्र-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

तीरभुक्ति-प्रकाशन

१, सर० पी० सी० बनर्जी रोड,

इलाहाबाद-२ [यू० पी०]

अवमूल्यन एवं भारतीय अर्थ-व्यवस्था पर उसका प्रभाव

● लेखक की अन्य रचनायें ●

१. औद्योगिक सिद्धान्त एवं नियन्त्रण
2. Foreign Aid to India
3. Devaluation and Fourth Plan
4. Foreign Capital in Underdeveloped Economies with Special Reference to India

अवमूल्यन
एवं भारतीय अर्थ-व्यवस्था पर उसका प्रभाव

●

लेखक

श्रीसुधाकान्तमिश्र, एम० ए०, डी० फिल्

प्रस्तावना

श्रीप्रयागदास हजेला, एम०ए०, डी० लिट्०

रीडर, अर्थशास्त्र-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यलय

तीरभुक्ति-प्रकाशन

१, सर० पी० सी० बनर्जी रोड,

इलाहाबाद-२ [यू० पी०]

श्री प्रयागदास हजेला,
एम०ए०, डी०लिट्०
रीडर, अर्थशास्त्र-विभाग

अर्थशास्त्र-विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय

प्रस्तावना

इस पुस्तक में डा० सुधाकान्तमिश्र ने अवमूल्यन के लगभग सभी महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है।

पिछले कुछ वर्षों से डा० मिश्र हमारी विदेशी सहायता सम्बन्धी समस्याओं के अध्ययन में संलग्न हैं। इस कारण पाठकों के लिए अवमूल्यन पर उनके विचार विशेष रूप से उपयोगी होने चाहिए।

पी० डी० हजेला
(प्रयागदास हजेला)

● लेखक की ओर से—

● अवमूल्यन

भारतीय अर्थ-नीति में भारतीय रुपये का दूसरी बार अवमूल्यन एक असाधारण घटना है। इसका प्रभाव न केवल हमारी आर्थिक समस्याओं पर पड़ा है, वरन् इसका प्रभाव जनता के समस्त व्यवहारों दैनिक बाजार-भाव, उद्योग-धन्धों, विदेशी सहायता एवं विदेशी अर्थ-नीति तथा हमारी योजनाओं पर पूर्ण रूप से पड़ा है। अभी यह कहना कि अवमूल्यन की नीति अच्छी है या बुरी है बहुत कठिन है, फिर भी बढ़ती हुई मँहगाई के कारण सामान्य जनता के लिए अवमूल्यन अभिशाप सिद्ध हुई है।

हिन्दी में जन-साधारण को अवमूल्यन तथा उसका भारतीय अर्थ व्यवस्था पर प्रभाव को संक्षेप में बताने वाली किसी पुस्तक का अभाव था। इसी कमी को दूर करने के लिए यह छोटी सी पुस्तक लिखी गई है, जिससे सभी इस महत्वपूर्ण घटना एवं इसके प्रभाव को समझ सकें। आशा है, सामान्य पाठकों के द्वारा एवं अर्थशास्त्र के उत्सुक पाठकों द्वारा इस छोटी कृति का उचित स्वागत होगा।

हिन्दी मेरी मातृभाषा नहीं है, फिर भी मैंने यह पुस्तक हिन्दी में लिखने की चेष्टा की है। आशा है पाठक भाषा सम्बन्धी त्रुटियों को सुधार कर इसे पढ़ेंगे। मैं अपने गुरुजनों, मित्रों, विद्यार्थियों तथा अन्य शुभेच्छुकों का कृतज्ञ हूँ, जिनके उत्साह, आग्रह के फलस्वरूप यह पुस्तक किसी प्रकार पूर्ण हो सकी है। अपने निदेशक एवं गुरू डा० श्री पी० डी० हजेला, रीडर-अर्थशास्त्र-विभाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय का हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने इस कृति को देख कर प्रस्तावना लिखने की कृपा की है।

— लेखक

विषय-सूची

अध्याय १

अवमूल्यन क्या है ?

"अवमूल्यन" का अर्थ होता है–देश की मुद्रा के बाहरी मूल्य का घट जाना अथवा कम हो जाना। यहाँ हम भारतीय सिक्के (रुपये) के अवमूल्यन की बात पर विचार करेंगे। ५ जून १९६६ ई० को भारतीय वित्त मंत्रणालय के वित्तमंत्री श्रीशाचीन्द्र चौधरी द्वारा भारतीय मौद्रिक नीति को व्यवस्थित करने के हेतु रुपये का अवमूल्यन (३६.५ प्रतिशत की कमी) करने की उद्‌घोषणा की गई अर्थात् रुपये का मूल्य ३६.५ प्रतिशत कमकर दिया गया है। उदाहरणतः जैसे अभी तक हम एक अमरीकी डालर मान के लिए रु० ४.७६ की रकम चुकाया करते थे लेकिन अब रुपये के अवमूल्यन के पश्चात् उस एक अमरीकी डालर मान के लिए रु० ७.५० चुकाना पड़ेगा।

भारतीय सरकार द्वारा रुपये के अवमूल्यन की उद्घोषणा ने भारतीय जनता और विचारको में एक चिन्ता और क्षोभ की स्थिति पैदा कर दी है। अतः हम उसे समझने का प्रयास करें। अवमूल्यन का आशय होता है देश के चलन की बाह्य कीमत को कम कर दिया जाना। अतः अवमूल्यन की परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते हैं: यह देश की मुद्रा की बाह्य कीमत को कम करने की एक विचार युक्त युक्ति है, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि अवमूल्यन के साथ-साथ चलन की आन्तरिक कीमत भी कम की जाय, यद्यपि कभी-कभी अवमूल्यन तथा मूल्य-ह्रास दोनों एक ही साथ किये जाते हैं।

अवमूल्यन के उद्देश्य

अवमूल्यन के उद्देश्य कई प्रकार के हो सकते हैं। यदि किसी देश ने भूल अथवा अन्य किसी कारण से देश की मुद्रा को आवश्यकता से अधिक बाह्य कीमत दे रक्खी है, तो उसके फलस्वरूप आयात बढ़ जायेंगे और निर्यातों में कमी हो जायेगी। ऐसी दशा में अवमूल्यन द्वारा इस त्रुटि को दूर किया जा सकता है। अधिकांश अवमूल्यन का उद्देश्य शोधनाधिक्य के असंतुलन को दूर करना होता है। मान लीजिये, यदि कोई देश ऐसा अनुभव करता है कि उसका विदेशी व्यापार सम्बन्धी धारा बराबर बनी रहे और वर्तमान दर पर विदेशी ऋणों, स्वर्ण-आयात अथवा अन्य उपायों द्वारा उसे दूर करना सम्भव नहीं है, तो वह अवमूल्यन द्वारा देश की विदेशी विनिमय दर को घटा कर उस घाटे को दूर करता है।

अवमूल्यन का परिणाम

यदि कोई भी देश उपर्युक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखकर अपने चलन का अवमूल्यन करता है, तो उस देश के माल की कीमतें विदेशों में घट जाती हैं और देश के भीतर विदेशी माल की कीमतें बढ़ जाती हैं। ऐसा करने से उस देश का निर्यात बढ़ जाता है और आयात की मात्रा घट जाती है। इस प्रकार शोधनाधिक्य का सन्तुलन फिर से स्थापित हो जाता है। कुछ देशों में अवमूल्यन का उपयोग उद्योग-संरक्षण के उद्देश्य से भी किया जाता है। अवमूल्यन का उपयोग विदेशों को दिये हुए ऋणों के भार को कम करने के लिये भी किया जाता है। परन्तु ऐसा करने से स्वयं अवमूल्यन करनेवाले देश की हानि हो सकती है। आर्थिक मंदी वाले देश के लिए अवमूल्यन की नीति अधिक उपयुक्त सिद्ध होती है, क्योंकि आर्थिक मंदी वाले देश को, जिसका आयात विशेष कृषित्व पदार्थ एवं कच्चा माल से सम्बन्ध रखता है, अवमूल्यन की नीति से अधिक लाभ होगा, क्योंकि आर्थिक मंदी के समय औद्योगिक वस्तुओं की अपेक्षा इन वस्तुओं से मूल्य में ह्रास अधिक होता है। मंदी की दशा में देश में स्वदेशी वस्तुओं का मूल्य ऊँचा रखा जा सकता है। ऐसी नीति अपनानेवाले देश में औद्योगिक विकास हेतु आत्म-निर्भरता आ जाती है।

अवमूल्यन के सम्बन्ध में एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि अवमूल्यन द्वारा देश के मूल्य-तलको आयात एवं निर्यात के माध्यम से ही प्रभावित किया जा सकता है, अतएव जिस देश का

विदेशी व्यापार अधिक महत्वपूर्ण है, उस देश में अवमूल्यन का प्रभाव अति शीघ्र तथा अधिक परिमाण में पड़ता है। अतएव उक्त आधार पर यह कहा जा सकता है कि अवमूल्यन न्यूजीलैंड जैसे छोटे देश के लिये अधिक लाभप्रद सिद्ध होगा, क्योंकि उसका विदेशी व्यापार उसके लिये महत्वपूर्ण होते हुए भी विश्व के लिए उतना महत्वपूर्ण नहीं है। इसके विपरीत अमेरिका जैसे विशाल देश के लिए यह लाभदायक नहीं हो सकता, क्योंकि उसका विदेशी व्यापार विश्व के लिए बहुत ही अधिक महत्वपूर्ण है।

परन्तु मुद्रा के अवमूल्यन की नीति अपनाने में बड़े ही सोच-विचार और युक्ति और दूरदर्शिता से काम लेना चाहिए, अन्यथा हो सकता है कि इस नीति के अपनाने से राष्ट्र को महान संकट का सामना करना पड़े। उदाहरण के लिए जर्मनी में सन् १६३१ में मुद्रा का अवमूल्यन किया गया, जिससे जर्मनी मे आर्थिक संकट सामने आ गया, उसे अपनी युद्ध-कालीन अर्थ-व्यवस्था को सुधारने के लिए विदेशों से अधिक मात्रा में ऋण लेना पड़ा था। परिणामतः जर्मनी की मुद्रा की पूर्ति बहुत बढ़ गयी और उसका निर्यात व्यापार शून्य के बराबर हो गया जिसके कारण जर्मनी की मुद्रा मार्क की मांग बहुत ही कम हो गयी। यहाँ तक स्थिति आ गयी कि जर्मनी की मुद्रा मार्क की बाह्य कीमत शून्य तक गिर जायेगी। अतः ऐसी आर्थिक संकट से छुटकारा पाने के लिए अन्य प्रकार के युक्ति अर्थात् विनिमय प्रतिबन्ध तथा कृत्रिम अधिमूल्यन की नीति अपनानी पड़ी थी। इसी प्रकार इन्डोंनेशिया का भी उदाहरण दिया जा सकता है। सन् १६५२ में इन्डोनेशिया ने अपनी मुद्रा

'रुपिया' का अवमूल्यन किया जिसके अनुसार उसने १ अमरीकी डालर ११.४ रुपिया के बराबर घोषित किया, लेकिन इस अवमूल्यन की नीति से इन्डोनेशिया की अर्थ-व्यवस्था सुदृढ़ नहीं हो सकी। अतः पुनः सन् १९६५ में इन्डोनेशियाई सरकार ने अपनी मुद्रा का अवमूल्यन १ अमरीकी डालर बराबर दस हजार रूपिया कर दिया। इन्डोनेशिया की मुद्रा की बाह्य कीमत इतना घटा देने पर भी वहाँ की अर्थ-व्यवस्था सुधर नहीं सकी।

अवमूल्यन की नीति अपनाने में सावधानी और प्रशासन की दृढ़ता तथा कठोरता से यदि काम नहीं लिया गया तो, सच पूछिये, देश में अनेक प्रकार की नई समस्यायों का जन्म हो जाता है, नये प्रकार के आर्थिक संकट उत्पन्न हो जाते हैं। देश और जनता को उनका सामना करने में कमर ही टूट जाती है और देश की अर्थ-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है। देश में वस्तुओं की मूल्य-वृद्धि का एक विशद जाल सा बिछ जाता है, जिसको काटना हिम्मत के बाहर हो जाता है, क्योंकि उत्पादन-लागत में वृद्धि हो जाती है। समस्त आवश्यक उपयोगी उपभोक्ता सम्बन्धी वस्तुएँ महंगी हो जाती हैं। बाजार से ये वस्तुएँ प्रायः लुप्त होने लगती हैं। ऐसी स्थिति में देश की अर्थ व्यवस्था को जर्जरित करने में देश के स्वार्थी व्यापारी जखीराबाजी, चोरबाजारी आदि अनैतिक कृत्यों को करके अधिकाधिक मुनाफा कमाने की नींति अपनाते हैं। इसका कुप्रभाव गरीब जनता और अल्पआयवाले वर्ग के व्यक्तियों पर अधिक पड़ता है। देश में महंगाई दूनी तिगुनी चौगुनी दर से बढ़ती जाती है। इसका कुप्रभाव देश के

अम विशेषकर श्रमिक-वर्ग पर तो बहुत ही बुरा पड़ता है, बढ़ती हुई महंगाई में उन्हें प्रतिदिनका भोजन भी नहीं प्राप्त हो पाता है। अवमूल्यन का कुप्रभाव देश में चलती हुई विकास योजनाओं पर भी बुरा ही पड़ता है क्योंकि ऋणका बोझ बढ़ता जाता है और उनकी अदायगी मुद्रा के तुरन्त अवमूल्यन करने पर भी नहीं की जा सकती। अवमूल्यन के द्वारा उत्पन्न हुई समस्याओं में एक महत्वपूर्ण समस्या यह है कि देश के लोगों का चरित्र-अधःपतित हो जाता है, वहाँ के लोगोंमें नीति-अनीति का कुछ ध्यान नहीं रह जाता है। अवमूल्यन की नीति एक स्वार्थी नीति जैसी है, क्योंकि एक देश अपने निजी स्वार्थ के लिए विश्व के अन्य देशों के साथ प्रतिस्पर्धा, प्रतिद्वंदिता और शत्रुता की भावना पैदा करता है। हरएक देश अन्तराष्ट्रीय बाजार में अपना ही प्रमुख स्थान बनाने की बात सोचने लगता है। उसे अन्य देशों के हानि-लाभ का भी कुछ ध्यान नहीं रह जाता है।

वास्तव में, अवमूल्यन की नीति, विशेषतः जबकि यह जान-बूझ कर किया जाता है, तो यह एक महान् अनैतिक नीति सिद्ध हो जाती है। उससे राष्ट्र का सम्मान घट जाता है। सचमुच, अवमूल्यन एक ऐसे खेल के समान है कि जिसे हर एक देश खेल सकता है, किन्तु यदि संसार के सभी देश उस खेल को खेलना शुरू कर दें तो विश्व के देशों में प्रचलित मुद्राओं में एक होड़ सी उत्पन्न हो जायेगी, कि किस देश की मुद्रा का कम से कम मूल्य रखा जाय और परिणामतः विश्व की मुद्राएँ मूल्य-हीन हो जायेगी।

निष्कर्ष रूप में, यह कहा जा सकता है कि अवमूल्यन की नीति जहाँ देश के भुगतान-असन्तुलन की संस्थिति पर लाती है, देश के निर्यात को बढ़ाने अर्थात् देश औद्योगिक विकास को अधिक से अधिक प्रोत्साहन और आयात को कम करके औद्योगिक आत्म-निर्भरता को बल देती है, देश में स्वदेशी और तीव्र-राष्ट्रीयता को जन्म को देती है, देश की जर्जरित अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ़ और सशक्त बनाती है, वहीं अवमूल्यन की यह महान् उपयोगी नीति देश में महान् आर्थिक मंदी, महंगाई, बेरोजगारी, देश के लोंगों में चरित्र-हीनता, दुश्चरित्रता, भुखमरी, स्वार्थी व्यापारियों के लिए मुनाफाखोरी का एक अच्छा रास्ता तैयार कर देती है। कभी-कभी देश की अर्थ-व्यवस्था को जीर्ण-जीर्णकर देशकी आजादी की खतरे में डाल विदेशियों का गुलाम बना सकती है।

●●●

अध्याय २

भारत में प्रथम बार अवमूल्यन : सन् १९४९ में

द्वितीय विश्व युद्ध अथवा युद्धोत्तर काल में स्टर्लिंग क्षेत्र के सभी देशों, विशेष रूप से ब्रिटेन का व्यापारिक सन्तुलन डालर क्षेत्र के साथ निरन्तर प्रतिकूल होता जा रहा था और जिसके फल स्वरूप 'डालर-गैप' बढ़ने लगा। सन् १९४६ ई० में यह 'डालर-गैप' २२. ६ करोड़ पौण्ड से बढ़कर सन् १९४७ ई० मे १०२.४ करोड़ पौंड हो गया। इससे स्टर्लिंग-क्षेत्र मे डालर का अत्यधिक अभाव होने लगा। इस प्रतिकूल व्यापारिक सन्तुलन होने के कई कारण थे। युद्ध के बाद आर्थिक पुनर्संगठन के लिये स्टर्लिंग क्षेत्र के प्राय: सभी देश पूंजीगत माल के लिए अमेरिका पर अत्यधिक मात्रा में निर्भर करने लगे थे। द्वितीय

युद्ध काल में अमेरिका ने औद्योगिक कुशलता अधिक प्राप्त कर ली थी, जिसके कारण संसार के अधिकांश देश अपनी पूर्ति के लिए अमेरिका पर ही आश्रित रहने लगे। अत: डालर की मांग बढ़ गयी, जिससे डालर का अभाव होने लगा। ब्रिटेन की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को इस युद्ध ने अच्छी तरह से अस्त-व्यस्त कर दिया था। इन्हीं कठिनाइयों से मुक्ति पाने के लिए इंग्लैंड ने १८ सितम्बर, १९४९ ई० को अपनी मुद्रा पौंड का अवमूल्यन घोषित किया। इसके अनुसार पौण्ड के मूल्य को ३०.५ प्रतिशत कम कर दिया गया जिससे पौंड और डालर का अनुपात १ पौंड = ४.४०३ डालर से घट कर १ पौंड = २.८० डालर हो गया।

इसी प्रकार भारत का व्यापारिक सन्तुलन भी डालर क्षेत्र के साथ प्रतिकूल था। आयात एवं निर्यात में काफी अन्तर और असन्तुलन था और इसी बीच इंग्लैंड ने अपने पौंड का अवमूल्यन भी किया था। स्टर्लिंग के अवमूल्यन होते ही स्टर्लिंग क्षेत्र के सभी देशों विशेषत: पाकिस्तान को छोड़कर थोड़े ही दिनों में अपनी-अपनी मुद्रा का अवमूल्यन घोषित कर दिया। भारतीय रूपये का भी स्टर्लिंग के अवमूल्यन के ठीक २४ घंटे के अन्दर ही १९ सितम्बर, १९४९ ई० को अवमूल्यन घोषित कर दिया गया। फलस्वरूप रूपये का डालर एवं स्वर्ण-मूल्य ३०.५ प्रतिशत घटा दिया गया अर्थात् १ रूपया ३०.१२५ सेन्ट से घटकर १ रूपया = २१ सेन्ट हो गया। इस प्रकार अमेरिका से १ डालर की वस्तुओं के आयात के लिए ३ रूपया ५ आना देना पड़ता था, अब उसी १ डालर के लिए ४ रू० १२ आना

देना पड़ रहा है। रुपये के अवमूल्यन में भारत ने पौण्ड का ही पूरा-पूरा अनुकरण किया।

भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन का तत्कालीन प्रभाव उस समय की अर्थ-व्यवस्था पर एक विशेषरूप से पड़ा जो कि विचारणीय है :

(अ) देश के भुगतान सन्तुलन की स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ। अवमूल्यन के फलस्वरुप भारत के व्यापारधिक्य की प्रतिकूलता में पर्याप्त कमी हुई। यद्यपि यह सुधार अस्थायी ही था, फिर भी इसका प्रमुख कारण भारतीय रुपये का अवमूल्यन ही था। अवमूल्यन के फलस्वरुप डालर क्षेत्र की वस्तुओं का भारतीय रुपये के रूप में मूल्य बहुत बढ़ गया था। इसके विपरीत भारतीय वस्तुएं इस क्षेत्र में सस्ती पड़ने लगीं। इस प्रकार भारत का डालर क्षेत्र के साथ व्यापाराधिक्य जो सन् १९४९ ई० में ५३ करोड़ रुपये से प्रतिकूल था, १९५० ई० में २९ करोड़ रुपये से भारत के पक्ष में हो गया।

(ब) अवमूल्यन के फलस्वरुप देश के मूल्य-तल में भी वृद्धि हुई—प्रारम्भ में कुछ आवश्यक वस्तुओं के मूल्य में कमी हुई, किन्तु पुनः मूल्य में वृद्धि आरम्भ हो गयी। इस प्रकार मूल्य का सामान्य सूचनांक जो अगस्त १९४९ ई० में ३८९.० था जून १९५० ई० में ३९५.६ हो गया। कोरिया युद्ध के फलस्वरुप यह मूल्य-तल बढ़कर अक्टूबर १९५० ई० में ४१३.५ हो गया।

(स) पौंड पावना का मूल्य भी कम हो गया। अवमूल्यन के बाद भारत ने पौंड पावना का जितना भाग डालर क्षेत्र में कम किया था, उसका मूल्य ३०.५ प्रतिशत से घट गया।

(द) विदेशी ऋण के भार में वृद्धि - भारत ने अमेरिका तथा विश्व बैंक से ऋण लिया था, उसके भार में अवमूल्यन के फल-स्वरुप वृद्धि हो गयी।

(य) अवमूल्यन के फलस्वरुप डालर क्षेत्र में निर्यात को प्रोत्साहन मिला तथा वहां से आयात में कमी हो गयी। अमेरिकी वस्तुएं भारत में महंगी पड़ने लगीं, जिससे भारत को यन्त्र तथा खाद्य-सामग्री खरीदने में कठिनाई होने लगी। साथ ही पाकिस्तान ने भी अपनी मुद्रा का अवमूल्यन नहीं किया था। अतः वहां से भी कच्चा जूट तथा कपास आदि मंगाने का खर्च बढ़ गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् १९४९ ई० में रुपये का अवमूल्यन का देश की अर्थ-व्यवस्था पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। उसके प्रभावों के मूल्यांकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत को अवमूल्यन से प्रारम्भ में कुछ लाभ अवश्य हुआ, किन्तु दीर्घ काल में उससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। व्यापारिक सन्तुलन में स्थायी रुप से सुधार नहीं हो सका। निर्यात व्यापार को प्रोत्साहन अवश्य मिला, परन्तु खाद्य-संकट की स्थिति को दूर करने के लिए बहुत बड़ी मात्रा में अमेरिका से खाद्यान्न का आयात करना पड़ा। पाकिस्तान ने भी अपनी मुद्रा का अवमूल्यन नहीं किया जिससे भारत की कठिनाइयां और भी बढ़ गयी थीं। भारत को पाकिस्तान से कच्चा जूट और कपास को खरीदने के लिए अब अधिक मूल्य चुकाना पड़ता था। इससे दोनों के बीच का व्यापार प्रायः बन्द सा हो गया था। इस प्रकार निष्कर्ष रुप में यह कहा जा सकता है कि

अवमूल्यन का भारतीय अर्थ-व्यवस्था पर बहुत अच्छा और स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा, जिससे भारत की माली हालत अथवा आर्थिक-स्थिति सुधर जाती और भारत अपना अस्तित्व एक सम्पन्न राष्ट्र की भाँति जमा लेता। वास्तव में, अवमूल्यन द्वारा इस प्रकार की समस्या का कोई विशेष स्थायी हल नहीं है।

रुपये के पुर्नमूल्यन की मांग

सन् १६४६ ई० में भारत द्वारा रुपये का अबमूल्यन करने के प्राय: १ वर्ष के पश्चात् से ही स्टर्लिंग क्षेत्र के सभी देशों में पुर्नमूल्यन की चर्चा की जाने लगी। भारत में भी रुपये के पुर्नमूल्यन के पक्ष में बहुत से तर्क दिये गये। कहा जाता है कि अवमूल्यन के बाद से देश के मूल्य-तल में सामान्य रूप से वृद्धि हुई है। अत: यदि रुपये का पुर्नमूल्यन किया जाय तो इससे मूल्य तल में काफी कमी होगी और प्रकार मुद्रा स्फीति का दबाव भी कुछ कम हो जायेगा। पुनमूल्यन के सबन्ध में एक दूसरा महत्वपूर्ण तर्क यह रहा कि इस डालर क्षेत्र से आयात के लिए कम• मूल्य देना पड़ेगा। आज विकास की योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए हमें यन्त्र और अन्य आवश्यक सामान तथा खाद्य-संकट को दूर करने के लिए खाद्यान्न का अमेरिका आदि डालर क्षेत्र के देशों से आयात करना पड़ता है। अत: पुनमूल्यन से इन वस्तुओं के लिए कम मूल्य चुकाना होगा, जिससे सरकारी तथा निजी क्षेत्र दोनों को राहत मिलेगी। इस सम्बन्ध में तीसरा महत्व-पूर्ण तर्क यह है कि हमारे देश से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं

में अधिकांश वस्तुएँ ऐसी हैं जिनकी माँग बेलोचदार हैं। उदाहरण के लिए चाय, जूट के सामान, लाख और अभ्रक आदि। अतः पुनमूल्यन का इन पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा।

किन्तु सरकार उस समय रुपये के पुनमूल्यन के पक्ष में नहीं रही। सरकार के अनुसार रुपये के पुनमूल्यन से हमारे निर्यात में और भी कमी हो जायेगी जिससे देश के व्यापाराधिक्य की प्रतिकूलता में और वृद्धि हो जायेगी। वित्त-मन्त्री श्री देशमुख ने अप्रैल १९५१ ई० में संसद से कहा था कि विशेषज्ञों के अनुसार रुपये के अवमूल्यम से १५ प्रतिशत पुर्नमूल्यन करने से भुगतान के सन्तुलन में लगभग ५० करोड़ रुपये तथा ३० प्रतिशत करने से १३५ करोड़ रुपये का घाटा होगा। इससे देश की कठिनाइयां और भी बढ़ जायेंगी, तथा हमारे देश का विदेशी व्यापार और भी विपदा में हो जायेगा, साभ ही पुर्नमूल्यन से देश में मन्दी की भी आशंका उत्पन्न होगी। अतः सरकार इन तर्कों के आधार पर पुर्नमूल्यन का विरोध करती थी। वास्तव में, आज देश के सामने प्रमुख समस्या निर्यात बढ़ाने तथा आयात कम करने की है। अतः अंब रुपये के पुर्नमूल्यन की बात ही उठ गयी है।

● ● ●

अध्याय ३

द्वितीय बार अवमूल्यन १९६६ में

सन् १९४९ ई० में भारत ने अपनी मुद्रा (रुपये) का अवमूल्यन सर्व प्रथम किया था। इसके अनुसार रुपये का मूल्य ३०.५ प्रतिशत घटाकर किया गया अर्थात् अवमूल्यन के पूर्व १ अमरीकी डालर के लिए ३ रु० ५ आना देना पड़ता था। लेकिन अवमूल्यन के पश्चात् १ अमरीकी डालर के लिए ४ रु० १२ आना दिया जाने लगा।

सन् १९६६ ई० में पुनः मुद्रा (रुपये) का अवमूल्यन करने का निर्णय लेना पड़ा। सरकारी विज्ञप्तियों के अनुसार विशेषतः वित्त-मंत्री श्रीशचीन्द्र चौधरी तथा प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के अभिभाषणों के आधार पर केवल यही

कहा जा सकता है कि यह अवमूल्यन ३६.५ प्रतिशत की कमी करके की गयी। अर्थात् जहाँ १ अमरीकी डालर के लिये रु० ४.७६ देने पड़ते थे, वहां अब १ अमरीकी डालर के लिए रु० ७.५० देने पड़ते हैं।

वित्त मंत्री श्रीशचीन्द्र चौधरी ने अपने रेडियो अभिभाषण में उद्‌घोषणा की है कि सरकार ने देश के सर्वोत्तम हित में रुपये का अवमूल्यन करने का निश्चय पक्ष और विपक्ष के तर्कों पर अच्छी तरह से विचार करने के उपरान्त किया है। पूर्व में फ्रांस और यूगोस्लाबिया ऐसे सुधार कर चुके हैं और उन्हें आर्थिक स्थिति सुधारने में सफलता मिली है। अवमूल्यन की नीति अपनाये जाने के कारण वास्तविक दृष्टि से नहीं, बल्कि बल्कि रुपये की दृष्टि से विदेशी ऋणों के भुगतान का बोझ बढ़ जाता है। इसी प्रकार से विदेशी क्रय का मूल्य भी बढ़ जाता है।

देश के विभिन्न भागों में लगातार दो बार फसलों के नष्ट हो जाने, पाकिस्तानी आक्रमण से उत्पन्न समस्याओं एवं देश में खतरा बढ़े रहने की दृष्टि से रक्षा-व्यय में वृद्धि, देश में वस्तुओं के मूल्य पिछले दस वर्षों में ८० प्रतिशत बढ़ जाने, देश में वस्तुओं के विदेशी मंडियों में निर्यात को बढ़ावा देने की स्कीमों के बावजूद निर्यात वस्तुओं की मांग कम होने, औद्योगिक विकास अवरुद्ध हो जाने, भारत में विदेशी ऋण के तेजी से बढ़ने और अभी तक २६२९ करोड़ रुपये तक पहुंच जाने और मार्च १९६६ तक भारत में विदेशी विनिमय के साधन रु०१९४ करोड़ के निम्न स्तर पर आ जाने से देश मे अनेक प्रकार की आर्थिक की कठिनाइयां पैदा हो गई थी। अतः सरकार ने उन्हें दूर करने और अर्थ व्यवस्था को व्यवस्थित करने के उद्देश्यसे इस

नीति को अपनाया जिससे व्यापार असन्तुलन, ऋण का भुगतान, तथा देशी निर्यात में वृद्ध हो एवं जिससे राष्ट्र के सामाजिक हित को अधिकतम किया जा सके।

वास्तव में देश के सामने सबसे बड़ी समस्या वैदेशिक व्यापार के असन्तुलन की थी। विदेशी ऋण की अदायगी एक बड़ी रकम से करनी है और साथ ही देश के विकास कार्यों को चलाने के लिये पुनः ऋण की आवश्यकता, आदि समस्याओं के कारण से को इस सरकार नीति को अपनाने के बाध्य होना पड़ा।

सरकार की यह अभिचिन्तना है कि मौजूदा समस्याएं विशेषतः मौद्रिक नीति सम्बन्धी, विदेशी विनिमय सम्बन्धी, और वैदेशिक व्यापार सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण रुपये के अवमूल्यन द्वारा हो सकेगा।

● ● ●

अध्याय ४

अवमूल्यन के सन्दर्भ में भारत सरकार की विज्ञप्ति

"भारत सरकार ने ६ जून, १९६६ को प्रातः २ बजे से रुपये के विनिमय मूल्य में परिवर्तन करने का निश्चय किया है। नया विनिमय मूल्य १ रुपया बराबर ०.११८५१६ ग्राम सोना होगा जबकि वर्तमान विनिमय मूल्य रुपया बराबर ०.१८६६२१ ग्राम सोना है। इस प्रकार रुपये का ३६.५ प्रतिशत के हिसाब से अवमूल्यन कर दिया गया है। अब रुपये की नयी विनिमय दर से एक अमरीकन डालर में ७.५० रु० मिलेगा और पौण्ड स्टलिंग में २१ रुपया मिलेगा। वर्तमान दर से एक अमेरिकन डालर के बदले ४.७६ रुपया और एक पौण्ड स्टलिंग के बदले

१३.३३ रुपया मिलता है। रुपये के विनिमय के सौदो में सहुलियत के ख्याल से नेगोशियेबूल इंस्ट्रूमेंट ऐक्ट के अंतर्गत ६ और ७ जून के दिन को सार्वजनिक छुट्टी घोषित कर दी गयी है।

रुपये के विनिमय मूल्य में परिवर्तन करने का यह निश्चय पूरी तरह विचार करने के बाद किया गया है और सरकार को यह विश्वास है कि हमारी वर्तमान परिस्थितियों में इस प्रकार का निश्चय हमारी अर्थ-व्यवस्था के हित में आवश्यक है। देश के आर्थिक विकास की अवश्यकताओं से पिछले १''' वर्ष में हमारे साधनों पर बहुत बड़ा बोझ पड़ा है, खास कर हमारे विदेशी साधनों पर। विदेशी सहायता के बावजूद हमारा विदेशी मुद्रा कोष दूसरी योजना के प्रारम्भ में ७८५ करोड़ से घटकर मार्च १९६६ के अन्त में सिर्फ १८४ करोड़ रु० रह गया।

इसके साथ ही, विकास की जरूरतों के अलावा, हमको अपने आर्थिक ढाचे को चलाने के लिये भी बाहर से लगातार अधिक आयात करना पड़ रहा है, क्योंकि विकास योजनाओं के फल-स्वरूप हमारे उद्योग बढ़ गये हैं। यद्यपि आयात की आवश्यकता को पूरा करने के लिये हम विदेशी सहायता पर भरोसा करते रहे हैं, और अभी कुछ समय तक करते रहेंगे, फिर भी हमारी बराबर यह कोशिश रही है कि हम खुद अपनी कमाई बढ़ाकर कम से कम आयात करें और अधिकाधिक स्वावलम्बी बने।

दुर्भाग्यवश निर्यात और अदृश्य साधनों से भी हमारी कमाई इधर इतनी नहीं हो सकी है, जिससे हमारी आवश्यकता पूरी हो सके, यद्यपि हमने निर्यातकों को अनेक तरह से सहायता

दी है। बहुत कुछ इसका कारण मुद्रा-स्फीत की प्रवृत्ति है, जिसके कारण निर्यात के लिए माल तैयार करने वाले उद्योगों में कीमतें बढ़ी हैं और उस माल की खपत बाहर जाने के बजाय देश में ही होने लगी है। कुछ समय से हमारा माल महंगा होने के कारण विदेशी बाजार में दूसरे देशों के माल के सामने ठहर नहीं पा रहा था और सरकार ने पिछले कुछ वर्षों में इस स्थिति को सुधारने के लिए अनेक कदम उठाये—जैसे निर्यात किये हुए माल के बदले आयात का अधिकार देना, कर-जमा-पत्र योजना शुरू करना और कुछ मामलों में सीधी सहायता देना। परन्तु इन कार्यवाहियों से भी स्थिति में सुधार नहीं हो सका है। हमें समय-समय पर निर्यात माल को सहायता देनी पड़ी है, जिसमे वह सस्ता हो सके। यहाँ तक कि चाय और पटसन जैसे पुराने निर्यात को भी कर-जमा-पत्र के जरिये सहारे की जरूरत पड़ रही है। फिर भी सब सहायताओं के बावजूद तीसरी योजना के शुरू के वर्षों में निर्यात के बढ़ने की जो प्रवृत्ति दिखलायी पड़ी थी, वह कायम नहीं रह सकी और सन् १९६५-६६ में तो पिछले वर्ष के मुकाबले हमारे निर्यात में कुछ कमी सी आयी है।

आयात के मामले में भी, आयात-शुल्कों की वृद्धि के होते हुए भी अभी भी आयातित माल बहुत ऊँचे दाम पर बिक रहा है, क्योंकि इसी तरह की देश में बनी हुई वस्तुओं के दाम विदेशों के दाम से बहुत ऊँचे हैं। इसका नतीजा यह हुआ है हम आयातित माल के स्थान पर अपने देश में उसी प्रकार के माल को बनाने में प्रगति नहीं कर सके हैं। आयात पर इस समय जितनी कड़ी रोक लगी है, उसके कारण आयातकर्ताओं को खूब मुनाफा कमाने का मौका मिला है और उपभोक्ता को उससे कोई लाभ नहीं पहुँचा है।

इसीलिए, अब तक हमने जो कार्यवाही की है, उसका अनुभव यही है कि उससे समस्या का स्थायी समाधान नहीं हो सकता। मुख्य रूप से यह समस्या इसलिए पैदा हुई है कि पिछले करीब १५ वर्षों में देश में भी और देश के बाहर भी रुपये की क्रय-शक्ति घट गयी है। हमने रुपये की वर्तमान विनिमय दर को कायम रखने का जो प्रयत्न किया है, उससे हमारा उद्देश्य तो नहीं सिद्ध हुआ, प्रत्युत थोड़े से आदमियों को ही लाभ हुआ है और सार्वजनिक कोष को निर्यात के माल को सहायता देने का बोझ उठाना पड़ा है। अभाव की स्थिति के कारण विदेशी पूँजी नियोजकों ने भारी लाभ कमाया है और अपने लाभ को वह वर्तमान महंगी विनिमय दर पर देश के बाहर भेजते रहे हैं जिसके कारण हमारे देश को विदेशी मुद्रा का अनावश्यक नुकसान सहना पड़ा है। यही नहीं, चोरी से विदेशी माल देश में लाने, अवैध कमाई को छिपाकर विदेशों में रखने और आयात किये हुए माल को छिपाकर जरूरत से ज्यादा दाम देने की प्रवृत्ति बढ़ी है और इस समय जो बाजार की और विनिमय दर है, उसमें हमें लगातार विदेशी मुद्रा का नुकसान सहना पड़ रहा है। पाँच सात वर्ष पहले हमें अदृश्य साधनों से काफी विदेशी मुद्रा की आय हो रही थी, जो बराबर घटते-घटते अब नगण्य हो गयी है।

इन्हीं सब परिस्थितियों के कारण सरकार को इस नतीजे पर पहुँचना पड़ा है कि बिना अपने आर्थिक ढाँचे को गहरा नुकसान पहुँचाए, वर्तमान स्थिति को कायम नहीं रखा जा सकता और इस स्थिति को ठीक करने का एक मात्र उपाय यही है कि रूपये के विनिमय मूल्य को ज्यादा यथार्थ स्तर पर लाया

ाय। इस निर्णय का मुख्य आर्थिक परिणाम यह होगा कि
ारे निर्यात-उद्योगों का मुनाफा बढ़ जायेगा और लोग उसकी
ोर आकृष्ट होंगे और उसमें ज्यादा रुपया और साधन लगा-
गे। हमारे खेती संबंधी निर्यात के बारे में भी यही बात लागू
। इस प्रकार आयात की चीजों का दाम बढ़ जायेगा और इस
ारण लोग ऐसी चीजों को बनाने की ओर आकृष्ट होंगे जो
नका स्थान ले सके। इस तरह आयत बचानेवाले धन्धों में
ी लोग पूँजी लगायेंगे। केवल इसी तरीके से हम आगे की
ौर उन्नति तथा विकास के लिए स्थिर वातावरण बना सकेंगे।
ाद्यपि अवमूल्यन के कारण चीजों के दाम कुछ बढ़ेंगे, फिर भी
ाशा है कि बहुत ज्यादा नहीं बढ़ेंगे, क्योंकि आयातित चीजें
ाभी ही कमी के कारण बहुत ऊँचे दामों पर बिक रही हैं।
ारकार भी ऐसे उपयुक्त उपाय करेगी जिससे अवमूल्यन के
कारण रहन-सहन का खर्च ज्यादा बढ़ने न पाये। यद्यपि
आयात किये हुए अनाज का मूल्य बढ़ जायेगा, फिर भी इसका
बिक्री-मूल्य नहीं बढ़ाया जायेगा। इसी तरह मिट्टी का तेल और
पेट्रौल पदार्थों के दामों में भी वृद्धि रोकने के लिए आयात और
उत्पादन-शुल्क में उपयुक्त परिवर्तन किया जायेगा, जिससे ये
उपभोक्ताओं को वर्तमान मूल्य पर ही मिलते रहें। सरकार
मिट्टी का तेल और खोपरा (नारियल की गिरी) का आयात
बढ़ाने की भी कार्यवाही कर रही है, क्योंकि जनसाधारण में
इनकी बहुत खपत होती है।

जिन लोगों के बच्चे विदेशों में पढ़ रहे हैं, उनको ऋण देने
की भी योजना चलायी जायेगी। सरकारी छात्रवृत्ति से जो
विद्यार्थी विदेशों में पढ़ रहे हैं, उनकी वृत्ति अपने आप बढ़
जायेगी।

खेतों की पैदावार बढ़ाने के लिए सरकार का यह विचार है कि विदेशों से आयात होने वाले उर्वरक का किसानों से ज्यादा मूल्य न लिया जाय। इनके दाम में जो वृद्धि हो जायेगी उसके कारण सरकारी सहायता से उसको किसानों के हाथ सस्ते भाव पर बेचा जायेगा। उर्वरकों पर और उर्वरक बनाने में काम आने वाली गन्धक और राक-फास्फेट जैसे पदार्थों पर जो कोई भी आयात शुल्क लगता है, उसी तरह लगता रहेगा।

रुपये का विनिमय मूल्य बदल जाने के कारण इस समय निर्यात के बदले आयात-योजना और कर-जमा-पत्र योजना के रूप में जो सहायता दी जाती है, उसकी आवश्यकता न रह जायेगी। इसीलिए दोनों योजनाएँ तत्काल बन्द की जा रही हैं। इसी के साथ इस बात का अलग से प्रबन्ध किया जायेगा कि निर्यातकों को जिस कच्चे माल और कल-पुर्जों आदि के आयात की जरूरत है, उसको मंगाने में प्राथमिकता दी जाय। जो हमारी निर्यात की पुरानी चीजें हैं, जिनको अभी ज्यादा सहायता नहीं पड़ती, उनके निर्यात पर हमें शुल्क लगाना होगा ताकि उनको होने वाला मुनाफा सार्वजनिक कोष में आ जाय। परन्तु निर्यातकों को भी इतनी साफ गुंजाइश दे दी जायेगी जिससे वे दूसरों के मुकाबले ठहर सकें।

अवमूल्यन के साथ वर्तमान आयात-शुल्कों में भी परिवर्तन जरूरी हो गया है। इस परिवर्तन में सरकार ने इस बात का ध्यान रखा है कि बजट के ऊपर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। इसके साथ ही शुल्कों की नयी व्यवस्था में इसका ख्याल रखा जायेगा कि आयात का कुल मूल्य विशेष कर मशीनरी का मूल्य, भारत में बनने वाली इसी तरह की चीजों से भिन्न न हो।

सरकार इस बात को भी समझती है कि जितनी हो सके, आयात पर लगे हुये वर्तमान कड़े प्रतिबन्धों को ढीला किया जाय। क्योंकि इनसे हमारे उद्योगों को खासकर के मध्यम और छोटे उद्योगों की हानि हो रही है। आशा है कि मित्र देशों और बाहर की संस्थाओं से काफी मदद मिलेगी, जिससे बहुत जल्दी ही हम आयात को इतना बढ़ा सकेंगे जिससे हमारी अर्थ-व्यवस्था की जरूरतें पूरी हो सकें, अर्थात् हमारे उद्योग चलते रहें। अवमूल्यन के कारण आयात के खर्च उपयुक्त स्तर पर आ जायेंगे, जिससे आयात पर लगे हुये वर्तमान प्रशासनिक नियंत्रणों को काफी ढीला बनाया जा सकेगा।"

भारत सरकार की उपरोक्त विज्ञप्ति से अवमूल्यन १६६६ की सभी मुख्य बातें स्पष्ट हो जाती हैं। अन्त में इस बात पर जोर देना जरूरी है, कि सरकार ने जो उपाय किए हैं, उनका उद्देश्य यह है कि हमारी आर्थिक-व्यवस्था और मजबूत हों और हमारी भविष्य की उन्नति और विकास का रास्ता पक्का हो जाय, परन्तु यदि मुद्रा-स्फीत की प्रवृत्तियों पर अंकुश न रखा गया। और उसके लिए हम लोगों ने आवश्यक उपाय न किया, तो उपरोक्त उद्देश्य पूरे नहीं हो सकेगें। संयम के द्वारा ही हम अपनी मुद्रा के मूल्य को कायम रख सकेंगे और भविष्य में फिर ऐसी स्थिति को न पैदा होने देंगे।

●●●

अध्याय ५

अवमूल्यन की नीति और आशंकित भय

भारत सरकार द्वारा अवमूल्यन की नीति की घोषणा किये जाने के पश्चात् देश की जनता एक विशेष भय की आशंका से विक्षुब्ध हो उठी। अवमूल्यन की नीति के विरोध में जनता की आवाजें उठायी जाने लगीं। इसकी आलोचना और निन्दा ने जनता को और भी भयभीत बनाने में काम किया।

मंहगाई का प्रकोप—देश में मुद्रा-स्फीत की स्थिति होने के कारण सामान्य चीजों के दाम बहुत मंहगे थे और जिसके प्रभाव से जनता पहले संत्रस्त से थी। अवमूल्यन की नीति के निर्णय लिये जाने पर जनता बढ़ती मंहगाई से त्राण पाने में निराश हो गयी। जनता अवमूल्यन से प्रभावित उपभोक्ता सम्बन्धी आवश्यक वस्तुओं के बढ़ते हुये
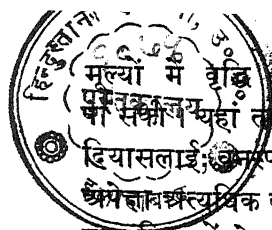
मूल्यों में वृद्धि को देख अपने कल्याण की सम्भावना न पा सकी। यहां तक कि खाद्यान्न, किरासिन तेल, साबुन, चाय, दियासलाई; वनस्पति, मांस-मछली और दूध के दाम पहले की अपेक्षा अत्यधिक बढ़ गये। दवाइयों के दाम और समाचार पत्र तथा किताबों के दाम भी पहले की अपेक्षा अधिक प्रतिशत में बढ़ गये, इससे समाज का मध्यम वर्ग, (एक निश्चित और नपी-तुली आमदनी वाले व्यक्तियों का वर्ग) और देश की गरीब जनता पर इसका बहुत असर जाहिर होने लगा। भारत सरकार की विज्ञप्ति में ऐसे आवश्यक उपभोक्ता पदार्थों के मूल्यों में वृद्धि की रोकथाम के लिए उपाय बताया गया है। इस स्थिति का नाजायज फायदा व्यापारी वर्ग के कुछ स्वार्थी लोगों ने उठाना चाहा। परन्तु यह गलत रास्ता है। सरकार को अपने वायदों को पूरा करने के लिए कोई भी कोर कसर बाकी नहीं रखना चाहिए। अगर उसे कुछ स्वार्थी लोगों पर कड़ाई और कठोरता की नीति भी काम में लानी पड़े तो उसमें उसे पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

अराजकता और भुखमरी का प्रकोप—ऐसी स्थिति में ऐसी सम्भावना की जा सकती है कि यह बढ़ती हुई मंहगाई जनता में अराजकता और भुखमरी को जन्म देगी। देश की जनता ऐसी विकट मंहगाई का सामना कब तक कर सकती है? एक दिन ऐसी भी स्थिति आ सकती है जबकि जनता बिलकुल अपंग हो जाय, और अधिकाँश जनता भुखमरी का शिकार हो जाय।

श्रमिक वर्ग पर कुप्रभाव—देश का श्रमिक-वर्ग अवमूल्यन के कुप्रभाव से बहुत अधिक संत्रस्त हो उठा और अपने

कल्याण की सम्भावना न कर पाया। वास्तव में, इसका प्रभाव श्रमिक-वर्ग की कार्य-क्षमता पर बुरा पड़ सकता है, जिससे उनकी मजदूरी प्रभावित हो सकती है और उनके रहन-सहन पर गहरा असर पड़ सकता है।

उद्योग-धन्धों पर गहरा प्रभाव—उद्योगपति तथा व्यापारी वर्ग अपने उद्योग और व्यापार पर आतंक, भय और जोखिम की सम्भावना समझ निराश होने लगे, क्योंकि आयातीत माल मंहगे पड़ते थे और इससे उत्पाद-वस्तुएँ और अधिक मंहगे होने की सम्भावना होती है क्योंकि नये मूल्य पर उत्पादन लागत अधिक पड़ जाती है। इससे उनके उद्योग में एक महान् क्षति हो सकती है। उन्हें ऐसी भी सम्भावना प्रतीत होती है कि कुछ कारोबार ठप्प भी हो सकते हैं।

छोटे और घरेलू उद्योग-धन्धों पर भी कुप्रभाव—विशेष कर इनमें काम करने वाले मजदूरों में एक क्षोभ पैदा हो गया, क्योंकि इनके भी टूट जाने की भी सम्भावना प्रतीत हुई। विशेषतः उत्तर-प्रदेश का हथकरघा उद्योग की ऐसी स्थिति नजर आयी है।

फिल्म-उद्योग पर गहरा प्रभाव—वास्तव में, फिल्म-उद्योग भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं रह सका। फिल्म-उद्योग के उद्योग-पतियों के कथनानुसार रंगीन फिल्मों के निर्माण में नये मूल्य पर अधिक लागत पड़ने की सम्भावना है।

विदेशों में पढ़ने वाले छात्रों पर कुप्रभाव—विदेशों में जो छात्र विद्याध्ययन कर रहे हैं उन पर इसका बहुत बुरा असर पड़ेगा, क्योंकि उनके पढ़ाई-लिखाई का खर्च अवमूल्यन की नीति से अधिक पड़ जायेगा।

देश में विदेशी आयातित साहित्य (विज्ञान, इन्जीनियरी, शिल्प आदि के साहित्य) पर बुरा प्रभाव—देश को इस नीति से यह एक बड़ा आघात पहुँच सकता है क्योंकि आज विकास की दिशा में जाने वाले साहित्य पर की ऐसी नीति का बहुत बुरा असर पहुँच सकता है, इससे देश की शिक्षा, विज्ञान, साहित्यिक विकास में एक बड़ी कमी आ सकती है।

अप्रत्यक्ष करों और शुल्कों का प्रकोप—जनता ने यह भी अनुभव किया कि सरकार अपनी अर्थ-व्यवस्था को ठीक रखने के लिए शायद नये प्रकार के टैक्स, शुल्क और करों को लगायेगी, यह कर-भार देश की जनता पर बुरा असर डालेगी।

देश में भी विदेशी तकनीकी व्यक्तियों पर व्यय अधिक—विदेशी तकनीकी व्यक्तियों पर व्यय की अधिक सम्भावना होगी।

ऊपर अवमूल्यन की नीति से सम्भाव्य आशंकाओं, भय और प्रकोपों का संक्षेप में दिग्दर्शन दिया गया, जिनमें सत्यता अधिक है, और परिणाम-स्वरुप जनता का प्रभावित होना भी निश्चित है। सरकार को अपनी विज्ञप्तियों और सही-सूझ-बूझ के द्वारा जनता के बीच फैली आतंक, असुरक्षा, भय, और सम्भावित कठिनाइयों और आशंकाओं को मिटा देने को कटिबद्ध होना चाहिए, अन्यथा देश और जनता में एक बड़ी क्रान्ति का सूत्रपात हो जायेगा जिसका श्रेय शायद इस रुपये के अवमूल्यन की नीति को ही मिल जाय। सरकार का यह बहुत बड़ा दायित्व है। उसे जनता की मौजूदा कठिनाइयों को अविलम्ब दूर करने को तैयार हो जाना चाहिए।

●●●

अध्याय ६

अवमूल्यन की नीति और आलोचनाएँ

अवमूल्यन की नीति के सम्बन्ध में देश के मर्मज्ञों द्वारा अनेकानेक आलोचना, टीका-टिप्पणियाँ की गयीं। आलोचनाओं का भी एक महत्व है। वास्तव में, आलोचनाएँ एक दर्पण के समान हैं जो हमारे कार्यों का ब्योरा, और उसकी यथार्थ सीमा प्रस्तुत करती है। उनसे हमारे काम में बाधा नहीं सहूलियत ही मिलती है और हम गलत से सही रास्ते पर भी चल सकते हैं। फिर हमें एक प्रजातांत्रिक गतिविधि में जनता और देश के विचारों और उनकी आवाजों के साथ-साथ बढ़ना है क्योंकि यह सरकार तो देश की प्रजा और जनता की होती है और प्रजातांत्रिक शासन तभी मजबूत हो सकता है, जबकि जनता और सरकार दोनों के विश्वास की अजस्र धारा बहती

रहे। भारतीय साहित्य में महात्मा कबीरदास ने निन्दक-अर्थात् आलोचक की आलोचनाओं का महत्व विशेष बतलाया है। अतः हम यहाँ पर कुछ विशेष आलोचनाओं और विचारों को क्रम से प्रस्तुत कर रहे हैं। इससे सम सामयिक परिस्थिति के लिए कुछ रास्ते मिल सकते हैं, अथवा हम आने वाले गलतियों से बच सकते हैं।

(१) श्री हुमायूँ कबीर—

अवमूल्यन एक बड़ी गलती है। अवमूल्यन से केवल जूट चाय, आदि प्रमुख वस्तुओं का निर्यात नहीं बढ़ेगा—वास्तव में, निर्यात में वृद्धि के लिए देश के उत्पादन को बढ़ाना होगा।

(२) श्री एच० सी० माथुर—

अवमूल्यन की नीति का अपनाना सरकार की महान् गलती है।......सम्पन्न राष्ट्रों को ही इससे लाभ होगा। अनाज के आधार पर ही वस्तुओं के मूल्य निर्धारित किये जायँ।

(३) श्रीरामसहाय पाण्डेय—

तीन पंचवर्षीय योजनाओं में अन्धाधुन्ध खर्च का परिणाम यही है कि हम दुनियाँ भर के कर्जदार हो गये हैं............ ......सरकार के आर्थिक सलाहकार और योजना बनाने वाले सभी विफल रहे।

(४) श्रीअजितप्रसादजैन—

अवमूल्यन की नीति निर्यात बढ़ाने की जिस योजना के नाम पर यह किया गया है, उसमें कुछ विशेष वृद्धि की गुंजाइश नहीं है।

(५) प्रोफेसर रंगा--

अवमूल्यन की नीति काँग्रेस सरकार की आर्थिक नीति की विफलता का द्योतक है—ऐसी नीति अपनाने से भारत की प्रतिष्ठा विदेशों में गिर गयी ।......अब कर-भार से जर्जर भारतीय जनता को आवश्यक वस्तुओं की बढ़ती हुई कीमतों को रोकने में सहयोग के निमित्त जनता को राजी करना सरकार के बूते के बाहर है ।

(६) यू० ए० आई०—

अवमूल्यन की नीति द्वारा जीवनोपयोगी वस्तुओं के मूल्य में १० से २७ प्रतिशत की वृद्धि हुई है......सभी राज्यों के उपभोज्य वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि हुई है ।...उपभोक्ताओं पर इसका बुरा प्रभाव पड़ा है । उनमें भय और असुरता की भावना फैली है ।

(७) दक्षिण वामपंथी कम्यूनिष्ट पार्टी की मंत्रि-परिषद्-

अवमूल्यन की नीति सरकारी नीति की अदूरदर्शिता और विवेकहीनता है । शासक वर्ग का यह निर्णय देश की स्वतन्त्र अर्थ-नीति पर अमरीकी साम्राज्यवाद के दबाव का ही परिणाम है ।......जीवनोपयोगी वस्तुओं की बढ़ती हुई कीमतों को रोकने में सरकार की असफलता को देखते हुए इस नयी अर्थ-नीति का प्रभाव यह होगा कि मध्यमवर्गीय जनता और मजदूर-वर्ग का जीवन एवं आर्थिक विकास कुंठित होगा और योजनायें असफल हो जायेंगी । विदेशी पूँजी की बाढ़ और विदेशी सामान की प्रतियोगिता में देश के बुनियादी उद्योग-धन्धे चौपट हो जायेंगे और देश की आजादी के लिए एक खतरे की सम्भावना खड़ी हो जायेगी ।

(८) श्री रामप्रकाश गुप्त, एम० एल० सी०—

अवमूल्यन जन-जीवन के लिए संकट को जन्म देगा।... वास्तव में १५ वर्षों की गलत आर्थिक नीति एवं दुर्नियोजन ने जिन विषम समस्याओं को जन्म दिया है, उसका सुधार तो नियोजन के ढाँचे में साहसी परिवर्तन द्वारा हीं हो सकेगा। अवमूल्यन से तो महंगी में बढ़ोत्तरी होकर ऐसी स्थिति पैदा होगी जिससे और अधिक अवमूल्यनकी आवश्यकताका अनुभव होगा और यह विषमय मुद्रा देश की वित्तीय स्थिति को नियंत्रण से दूर कर देगी।............महंगाई के परिणामस्वरूप केवल उद्योगपति एवं जखीरेबाजों को ही लाभ पहुँचेगा, साधारण उपभोक्ता के लिए तो यह एक अभिशाप ही सिद्ध होगा।

(९) श्री वी० के० कृष्णमेनन—

अवमूल्यन की नीति से भारत-सरकार अमेरिका के दबाव में आ गयी है तथा समाजवादी उद्देश्यों से हटती जा रही है......भारत द्वारा उठाये गये इस कदम से अमेरिका भारत की आर्थिक-स्थिति का लाभ उटाना चाहता है।

(१०) श्री राजगोपालाचारी—

अवमूल्यन नीति पिछले १५ वर्ष की कुव्यवस्था का परिणाम है। रुपये के वास्तविक मूल्य में गिरावट की शिकायत करने से कोई लाभ नहीं है। हम इस समय दिवालिये हो गये हैं। इस दुव्यवस्था को हमें १९६७ के आम चुनाव में समाप्त करना चाहिए।......जिन लोगों ने इस दुर्व्यवस्था को चलने की अनुमति दी उन्हें अब रुपये के अवमूल्यन से निस्तब्ध होने

का कोई अधिकार नहीं है। इस अवमूल्यन से होने वाली कठिनाइयों को अब हमें सहना ही पड़ेगा। भारतीय कांग्रेसी पार्टी ने इसे देश के हितों के साथ महान् विश्वासघात बताया है। पार्टी की माँग है कि संसद का अधिवेशन बुलाकर इस पर विचार किया जाना चाहिए।

(११) श्री एच० ए० डागे—

अमरीकी साम्राज्यवादियों तथा एकाधिकार पूँजी के हाथ देश को बेचने के विरोध तथा श्रीमती इन्दिरा गांधी की सरकार की बर्खास्त कर देने की मांग को प्रस्तुत किया जायेगा। रुपये का अवमूल्यन करके तथा अमरीकन एकाधिकारिक पूँजी को नयी छूट देकर सरकार ने जनता और राष्ट्र के हितों के साथ विश्वासघात किया है। अवमूल्यन की नीति क्रान्ति जनक आर्थिक आघात है। इससे देश में क्रान्ति का जन्म अवश्य होगा अवमूल्यन के फलस्वरूप श्रमिक-वर्ग की कठिनाइयाँ बढ़ गयी हैं।

(१२) श्री टी० टी० कृष्णमाचारी—

अवमूल्यन की नीति अमेरिका के अधीन भारत की आर्थिक दासता की नीति है। अमरीका की सभी सलाहें चाहे वे आर्थिक अथवा वित्तीय मामलों से सम्बन्ध रखती हैं, वे भारत के हित में नहीं अमरीका के ही पक्ष और हित में होगीं। यह अमरीका की एक बड़ी कूटनीतिक नीति है।

(१३) श्री चिम्मनलाल वी० मेहता—

अवमूल्यन से उद्योगीकरण की गतिविधि धीमी पड़ेगी। बाहर

से आने वाले माल की कीमत काफी बढ़ जायेगी, जिससे विशेषतः मंहगी ही बढ़ेगी और निर्यात को कोई लाभ न होगा।

(१४) श्रीरामकृष्ण बजाज—

अवमूल्यन की नीति एक अवांछनीय नीति है।

(१५) प्रोफेसर श्रीश्रौफ-अर्थशास्त्री—

अवमूल्यन की नीति भारत की अर्थ-व्यवस्था पर एक जबरदस्त आघात है। अनुत्तरदायित्वपूर्ण ढंग के नियोजन द्वारा देश की अर्थ-व्यवस्था किस हद तक बिगड़ चुकी है यह रुपये के अवमूल्यन द्वारा प्रकट होती है। अवमूल्यन से मूल्य में वृद्धि नहीं रुकेगी।

(१६) श्री सी० डी० देशमुख—

अवमूल्यन की नीति से प्रतियोगी विकासशील देशों को भारी क्षति प्राप्त हो सकती है। यह बात समझ में नहीं आती कि आखिकार ऐसा कौन सा कारण है जिससे भारत की आर्थिक नीतियाँ इस ढंग से विफल हो गयीं कि रुपये का अवमूल्यन करना अनिवार्य हो गया। आवश्यकता इस बात की थी कि आर्थिक नीतियों का सर्वेक्षण और संचालन इस ढंग से होता कि ऐसी नौबत ही न आती कि रुपये का अवमूल्यन किया जाता। हम अपनी आयसे कहीं अधिक व्यय करते हैं। अपनी आय के अनुसार ही व्यय करने की नीति हम तभी अपना सकते हैं जबकि हम अपनी योजनायें स्वेच्छा से विदेशी सहायता पर न बनाकर आत्म-निर्भर रूप से

बनाने में सहायक होंगे। सरकार में कार्य क्षमता का अभाव है। हमें सरकार चलाने के लिए सबसे अधिक प्रतिभाशाली व्यक्ति की, जिसमें मैं भी शामिल हूँ, विश्वविद्यालयों उद्योग-धन्धों तथा अन्य क्षेत्रों से खोज करनी चाहिए। यदि कोई देश, जो कच्चे माल का निर्यात करता हो अवमूल्यन करे तो उससे प्रतियोगी विकासशील देशों के निर्यात को क्षति पहुँचती है। इससे विकसित तथा धनी देश तो मालामाल हो जाते हैं, किन्तु विकासशील देशों का वर्ग निर्धन हो जाता है। अवमूल्यन के निर्णय के अलावा कोई दूसरा ही रास्ता अपनाने का निर्णय किया जाता। संसार में ऐसी चर्चा है कि भारत ने अवमूल्यन इसलिए किया कि वह आर्थिक विकास की महत्वाकांक्षी योजना को कार्यान्वित करना चाहता है। जिस देश में मुद्रा-स्फीत का बोलबाला हो गया है, वहाँ बुद्धिमानी यही थी कि भारत को मिलनेवाली विदेशी सहायता के विस्तार का प्रतिरोध किया जाता। ...यह नीति भारत के लिए हानिकारक है।

(१७) सम्पादक, भारत—

अवमूल्यन का प्रत्यक्ष प्रभाव जनता पर पड़ेगा। इसलिए मोटे तौर पर हमें यही कहना है कि मूल्य घटाने से जनता को और अधिक मंहगी का शिकार होना पड़ेगा। अवमल्यन की नीति भारत के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है।

(१८) सम्पादक, जन्म-भूमि—

मुद्रा का अवमूल्यन करके देश को बन्धक रख दिया गया है। भारत द्वारा अवमूल्यनकी नीति अपनाना साम्राज्यवादियों के समक्ष आत्म समर्पण कर न ।

(१६) सम्पादक सरस्वती –

कर्ज की चीते थे भय, पर ये न सोचा था कभी,
रंग लायेगी हमारी, फाका मस्ती एक दिन !

भारत सरकार की दशा आज ठीक ऐसी है। अपव्यय पर उचित नियन्त्रण नहीं रक्खा जा सकता। भ्रष्टाचार बढ़ने लगा, फिर भी देश का उत्पादन नहीं बढ़ा किन्तु जितने लाभ की आशा थी उतना नहीं हुआ। खर्च इतना बढ़ गया कि कर्ज लेने के अतिरिक्त घाटे के बजट बनाये जाने लगे। इससे मुद्रा स्फीत बढ़ी। चीजों के दाम बढ़ने लगे। रुपये की क्रयशक्ति दिनोदिन कम होने लगी। संसार के बाजार में रुपये का भाव गिरने लगा। ऐसी स्थिति हमने अपने से खुद पैदा की है। उन सभी का परिणाम आगे हमारा भविष्य ही बतायेगा। भारत को अभी कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

● ● ●

अध्याय ७

अवमूल्यन की नीति : अन्य देशों में

(१) ग्रेट-ब्रिटेन (इग्लैण्ड) में पौंड के अवमूल्यन के पूर्व की परिस्थिति—

द्वितीय विश्व युद्ध सितम्बर १६३६ में छिड़ा और सन् १६४५ के मध्य तक चलता रहा। इस महान् युद्ध ने इस अल्पकाल में ही ग्रेट-ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था पर इतना गम्भीर घातक प्रभाव डाला और विश्व-व्यापार में उसके स्थान में इतना अधिक मौलिक परिवर्तन किया कि यदि हम इसके परिणामों को क्रान्ति की संज्ञा दें, तो अत्युक्ति न होगी। सन् १८७० ई० से ग्रेट-ब्रिटेन की औद्योगिक एवं वाणिज्यिक सर्वोच्चता में ह्रास दृष्टिगोचर होने लगा था। तात्कालिक अर्थ-व्यवस्था आर्थिक संकट से आक्रान्त थी। इस महान् युद्ध

ने ग्रेट-ब्रिटेन के लिए महान् क्रान्ति का आह्वाहन किया। युद्ध काल के समय बम वर्षा और वाणिज्य पोतो को डुबाने और सैनिक क्रियाओं के कारण धन की अपार क्षति हुई जो लगभग ६,६०० लाख पौंड थी। गृह-पूंजी में भी ३,००० लाख पौंड की कमी हो गयी। उद्योगों के यन्त्रों तथा उपकरणों की घिसावट से १०,००० लाख पौंड का घाटा हुआ ६,००,००० के लगभग मानवीय क्षति हुई। यौद्धिक अस्त्र-शस्त्र के दाम चुकाने के लिए विदेशी विनियोजित पूंजी को हाथ से निकाल देना पड़ा। ब्रिटेन की विदेशी विनियोजित पूंजी का लाभ भी कम होने लगा। सन् १९३८ में ग्रेट-ब्रिटेन के अन्य देशों में लगी हुई पूंजी से प्राप्त होने वाला लाभ उसके सम्पूर्ण आयात के मूल्य का २१ प्रतिशत था तो सन् १९४७ में यह घटकर केवल ३ प्रतिशत रह गया। इस युद्ध के पूर्व जब ब्रिटेन का निर्यात कम होने लगा था तो भुगतान सन्तुलन की समस्या गम्भीर हो गयी थी। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् यह समस्या और भी चिन्ताजनक हो गयी। उसके अतिरिक्त युद्ध के विध्वन्स के कारण कच्चे माल का मूल्य अत्यन्त अधिक हो गया—इतना बढ़ गया कि सन् १९३८ ई० में जितना सामान आयात करने के लिए था, उतने सामान का निर्यात करना पड़ता था उतने ही सामान का आयात करने के लिए सन् १९४८ ई० में १।५ अधिक सामान का निर्यात करना आवश्यक हो गया। किन्तु दूसरी ओर ग्रेट-ब्रिटेन का निर्यात पहले की अपेक्षा कम हो गया। इस भुगतान सन्तुलन को ठीक करने के लिए तथा युद्ध का संचालन करने के लिए ब्रिटेन को युद्धकाल में विदेशों से ३,००० लाख पौंड तक का ऋण लेना

पड़ा। इंग्लैंड की कठिनाइयां और भी गम्भीर तथ्यों को ग्रहण करने लगीं। अमेरिकी एवं अन्य विदेशी वस्तुओं की मांग इंग्लैंड में बहुत बढ़ने लगी। सन् १९३८ ई० में इंग्लैंड का आयात व्यापार ३१ प्रतिशत था। लेकिन १९४७ ई० में यह ४४ प्रतिशत हो गया। आयात की अपेक्षा निर्यात की स्थिति बहुत थोड़ी रही। फलतः डालर की गम्भीर समस्या उत्पन्न हो गयी। युद्ध का इंग्लैंड की कृषि एवं उद्योग पर कुप्रभाव पड़ा। युद्ध के पश्चात् इंग्लैंड को मुद्रा-स्फीत का भी सामना करना पड़ा। सन् १९३८-३९ में सम्पूर्ण निर्मित नोटों की संख्या ४८४ लाख पौंड थी जो सन् १९४७ ई० में बढ़कर १३८६ लाख पौंड हो गयी थीं, अर्थात् इस अवधि में नोटों की संख्या में तीन गुना वृद्धि हुई।

इंग्लैंड ने इन्हीं परिस्थितियों का सामना करने के लिए कई प्रकार के कार्य किये, जिसमें ब्रिटेन का आर्थिक नारा भी था — "निर्यात करो अथवा मरो"। निर्यात-व्यापार बढ़ाने के लिए इंग्लैंड की सरकार ने अनेक प्रयास किये। सन् १९४७ ई० में ब्रिटेन के भुगतान सन्तुलन में ६३० लाख पौंड का घाटा था, जिसे संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा से डालर का कर्ज लेकर तथा स्वर्ण राशि और पार सामुद्रिक पूंजी को बेंच कर पूर्ण किया गया। ब्रिटेन के डालर भण्डार में तीव्र गति से कमी हुई। अतः ग्रेट-ब्रिटेन को अपने आयात व्यापार में महान् कटौती करनी पड़ी। अमेरिका ने भी इंग्लैंड को साख के रूप में ६३० लाख पौंड ऋण, तथा अनुदान के रूप में ७३३ लाख पौण्ड दिया।

इंग्लैंड की उपरोक्त परिस्थिति के अवलोकन के पश्चात्

यह सिद्ध हो जाता है कि सन् १६४६ ई० इग्लैंड के लिए अत्यन्त बुरा वर्ष सिद्ध हुआ था। इग्लैंड में आर्थिक संकट इतना बढ़ गया था कि इग्लैड को अपने पौण्ड का अवमूल्यन करना अपरिहार्य हो गया। अतः सितम्बर १६४६ ई० में पौंड के मूल्य में ३०.५ प्रतिशत की कमी करने की घोषणा की गयी। यह अवमूल्यन की नीति देश के निर्यात व्यापार को बढ़ाने और आयात व्यापार को घटाने के हेतु किया गया था।

इग्लैंड में पौण्ड के अवमूल्यन की यह नीति स्वयं आर्थिक संकट को दूर करने में कहां तक सफल रही, यह कहना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि इस नीति के साथ ही साथ अन्य परिस्थितियां भी कार्य कर रही थीं। फिर भी यह कहा जा सकता है कि ग्रेट ब्रिटेन के निर्यात में वृद्धि करने में अवश्य सहायक सिद्ध हुआ। इंग्लैड की आर्थिक दशा में पर्याप्त सुधार हो गया था और योरोपीय पुनरूद्धार कार्यक्रम के अन्दर ग्रेट ब्रिटेन को दी जाने वाली सहायता निलम्बित कर दी गयी। ब्रिटेन के व्यापार की दिशा में और संरचना में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इग्लैंड के निर्यात व्यापार के अन्तर्गत जहाज, यंत्र, अभियांत्रिक वस्तुएं, विद्युत, उपकरण, वाहन, आदि महत्वपूर्ण हो गये। जबकि आयात व्यापार में खाद्यान्न, पेय, तम्बाकू आदि का महत्व अपेक्षाकृत घट गया। उत्पादन शक्ति में भी इग्लैंड ने एक सराहनीय प्रगति की, क्योंकि युद्ध के पूर्व इग्लैंड ३१ प्रतिशत ही उत्पादित करता था लेकिन सन १६५० ई० में यह ४० प्रतिशत खाद्यान्न उत्पादित करने लगा। अतः इग्लैंड में पौंड के अवमूल्यन की नीति आर्थिक स्थिति को सुधारने में अधिक कारगर सिद्ध हुई।

(२) जापान के आर्थिक-विकास कीप्रारम्भिक स्थिति-

प्रारम्भमें जापान की आर्थिक-स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। जापान में भूमि तथा प्राकृतिक साधनों की कमी थी क्योंकि जापान मुख्यतया एक पर्वतीय प्रदेश है। जापान के कुल भूमि के १५.५ प्रतिशत भाग से ज्यादा पर खेती अर्थात् कृषि-उत्पादन का कार्य नहीं किया जा सकता, अतः जापान में कच्चे माल का तो एक दम अभाव है। खाद्यान्न, लोहा, पेट्रोलियम, तांबा, नमक, ऊन, कपास, खनिज ईधन, लगभग सारी की सारी चीजों को जापान बाहर के देशों से अपने यहाँ मँगाता हैं। इतनी ही बात नहीं, जापान की बढ़ती हुई जनसंख्या में भी कमी नहीं है। इस समय जापान की जनसंख्या लगभग आठ करोड़ है। इसके अतिरिक्त विदेशी व्यापार पर अत्यधिक निर्भरता और साथ ही साथ परिस्थितियों का भी प्रभाव जापान पर खूब पड़ा। युद्धोत्तर जापान की अपने विदेशी व्यापार की बढ़ाने की अत्यधिक आवश्यकता प्रतीत हुई।

१६३० से १६३५ के बीच में जापान का आयात एक एक अरब चौहत्तर करोड़ लाख डालर और निर्यात एक अरब एकसठ करोड़ डालर था। परन्तु आधुनिक समय में अमरीकी सहायता के बल पर जापान फिर अपनी युद्ध-पूर्व की स्थिति की ओर अग्रसर हो रहा है।

१६३०-३५ के वर्षों के बीच व्यापार का मापदण्ड यदि हम १०० स्वीकार कर लें, तो १६४५ और १६४६ के बीच के वर्ष का निर्यात ८८ और आयात २३.२ मान होगा। १६४७-४८ में यह निर्यात ११.७ और १६.२ हो गया तथा आयात ३६.८

और ३६.७ हो गया। आयात व्यावार में जो इतनी अधिक वृद्धि दिखाई देती है, उसका मूल कारण जापान में अमरीकी सहायता के आधार पर औद्योगिक विकास के लिए कच्चे माल का आयात ही है। १६४६ में जापान ने ६० करोड़ डालर का माल आयात किया और ५० करोड़ डालर का माल निर्यात किया। १६५० में ६३ करोड डालर का माल आयात किया और ८२ करोड़ डालर का माल बाहर भेजा। १६५१ में एक अरब चालीस करोड़ डालर का माल आयात किया और एक खरब चालीस अरब डालर का माल बाहर भेजा। वास्तव में, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जापान का सारा व्यापार पूरी कड़ाई के साथ मित्र शक्तियों की ही आधीनता में होता था, परन्तु १६५० आते-आते लगभग सारा खानगी व्यापार पूर्ववत हो गया।

सच पूछिये तो, जापान की प्रारम्भिक समस्याओं में एक प्रमुख समस्या वैदेशिक व्यापार की थी। जापान की आर्थिक नीति को सफलता पूर्वक चलाने के लिए मंत्री शासन के राज-पुरुषों की वैदेशिक पूंजी की बहुत ज्यादा जरूरत थी, क्योंकि देश में कच्चे माल की बहुत बड़ी कमी थी। कच्चे माल को आयात करके उसका भुगतान करने के लिए बहुत सा धन व्यय करने की समस्या जापान के लोगों के सामने थी। सन् १८०० ई० में जापान की सरकार ने इसके लिए अनेक प्रयत्न किये। जापान में व्यवसायीकरण करने के लिए जापान ने विदेशों से बहुत बड़ी मात्रा में ऋण लिया। १६१२ में जापान का राष्ट्रीय ऋण दो अरब पेन से भी अधिक था, जिसे चुकाने में जापान की सरकार को एक लम्बी रकम हर साल भुगतनी पड़ती थी। लेकिन दूसरी ओर उपरोक्त जापान के आयात और निर्यात-

व्यापार की स्थिति देखते हुए यह कहा जा सकता था कि जापान का निर्यात-व्यापार अस्थिर था। साथ ही साथ, जापान का वैदेशिक व्यापार बहुत ही सीमित और केन्द्रित था। इस प्रकार जापान के वैदेशिक-व्यापार का भुगतान-संतुलन संस्थिति पर नहीं था। फल-स्वरूप जापान की तत्कालीन अर्थ-व्यवस्था प्रायः बहुत ही भयंकर हो गयी थी।

विनिमय की इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए जापान की सरकार ने सन् १८९७ में अपने देश की मुद्रा का स्वर्ण-मान स्थापित किया।

परिणाम स्वरूप, जापान की सरकार अपने वैदेशिक-व्यापार के भुगतान असन्तुलन की संस्थिति पर लाने में सफल हुई। आयात के भुगतान की भाँति अदायगी को चुकाने में भी जापान समर्थ हुआ। १९१५ के उत्तरार्द्ध से जापानी सामानों की मांग विदेशों में अत्यधिक बढ़ने लगी। व्यावसायिक उन्नति तेजी से होने लगी, जिससे जापान का निर्यात अत्यधिक बढ़ गया।

इतना ही नहीं, यदि हम उत्तरार्द्ध के बाद का जापानी औद्योगिक-विकास का इतिहास देखें, तो जापान में औद्योगिक विकास वृद्धिमान-दर से अपनी चरम सीमा की स्थिति पर मालूम पड़ेगी। आधुनिक जापान के आयात-निर्यात व्यापार की तालिकायें निम्न प्रकार हैं :

(१) जापान का वैदेशिक व्यापार, १९५५-६१

(इकाई : डालर १० लाख)

वर्ष	निर्यात	आयात
१९५५	२,०११	२,४७१

१९५६	२,५०१	३,२२९
१९५७	२,८५८	४,२८३
१९५८	२,८७७	३,०३३
१९५९	३,४५७	३,६००
१९६०	४,०५५	४,४९१
१९६१	४,२३६	५,८१०

(२) जापान के कुछ मुख्य पदार्थों की निर्यात तालिका

(इकाई : १० लाख डालर)

वर्ष	१९५९	१९६०	१९६१
खाद्य सामग्री, पेय	२६१	२६८	२६५
जहाजी सामान	१७९	१७५	२६३
वस्त्र तथा वस्त्र सामग्री	१,०३१	१,२२३	१,१५६
कच्ची रेशम	४६	५०	४६
सूती धागा	१७	५२	३३
सूती चीजें	२९१	३५२	३४८
रेशमी चीजें	५१	५२	३४
रेयन तथा उसकी बुनी चीजें	१६२	१७५	१६१
पोशाकें	२०७	२२१	१९१
औषधि निर्माण सम्बन्धी तथा रसायनिक सामग्री	१६६	१६९	१८९
रसायनिक खाद	८१	५९	६३
धातु संबंधी खनिज सामग्री	१२६	२४५	१४२
धातु और धातु सामग्री	४०१	५६१	५६०
लोहा और इस्पात	२५३	३८८	८०

धातु की वस्तुएँ	१२१	१४८	१५३
मशीनें	८०६	६२८	१,११६
वस्त्र बुनने की मशीनें	३५	४८	५८
सिलाई की मशीनें	५२	४८	४६
रेडियो सैट	१०४	१४५	१६०
जहाज	३५८	२८८	२७८
मोटर गाड़ियां	४१	७८	१०८
अन्य	६६२	७६०	८०५
खिलौने	७७	६०	८३
प्लाइवुड	७६	६३	५६
नेत्र सम्बन्धी औजार	६१	७४	८४
कुल जोड़	३,४५६	४,०५५	४,२३६

(३) जापान के कुछ पदार्थों की आयात तालिका

(इकाई : १० लाख डालर)

वर्ष	१६५६	१६६०	१६६१
खाद्य सामग्री तथा पेय	४६७	५४७	६६७
गेहूँ	१६१	१७७	१७६
चीनी	१०५	१११	१२२
बुनाई की कच्ची सामग्री	६५६	७६०	६८२
ऊन	२१२	२६५	३४५
कपास	३५५	४३१	५३०
कच्ची धातु तथा रद्दी माल	४६६	६७३	६५६
कच्चा लौहा	१४६	२१४	३०२

रद्दी लौहा	२०४	२३०	३८६
लौहे तर की धातु	१०७	१६६	१७१
अधातु संबंन्धी			
कच्ची खनिज सामग्री	७९	१०३	११६
खनिज ईंधन	५५७	७४२	९४२
कोयला	८७	१४२	१८८
तेल	४६०	५८६	७२२
पशु तथा सब्जी	५०३	६६३	६९५
कच्चा चमड़ा	४१	४१	५८
सौयाबीन	२३	१०७	१२९
कच्चा रबड़	९८	१२६	९८
जंगली लकड़ी	१३५	१७०	२६०
रसायनिक पदार्थ	२२१	२६५	३३६
मशीनें	३५२	४०३	५९९
अन्य	२३८	३६५	५२७
कुल जोड़	३,६९९	४,४९१	५,८१०

उपर्युक्त तालिकाओं का अवलोकन करने से यह भली-भांति सिद्ध हो जाता है कि युद्ध से पूर्व से १९६१ तक जापान की आर्थिक एवं औद्योगिक प्रगति किस दर से हुई। यद्यपि कच्चे पदार्थ एवं ईंधन अब भी जापान की आयात वस्तुओं की तालिका में मुख्य रूप से विद्यमान हैं, फिर भी वे १९६१ तक, युद्ध के पूर्व के कुल आयात के लगभग ८० प्रतिशत से (६·६ प्रतिशत तक) गिर गये हैं। साथ ही बने हुए माल के आयात वृद्धि हुई है। कच्चे पदार्थों एवं ईंधन में पैट्रोल, रद्दी लोहे तथा

कच्चे लोहे के आयात में अत्यधिक वृद्धि हुई है। यह वृद्धि जापान के महान् औद्योगिक विकास का प्रतिफल है। धातु उत्पादों, मशीनरी, तथा रसायन का निर्यात जिसका युद्ध पूर्व औसतन परिमाण कुल निर्यात का केवल १६ प्रतिशत था, १९६१ तक ४४ प्रतिशत तक बढ़ गया था। पिछले कई वर्षों में विशेष रूप से सिलाई की मशीनों, जहाजों, रेडियों, कैमरे, प्लाइवुड, तथा ट्रांजिस्टर रेडियो जैसे बने हुए माल के निर्यात में आश्चर्य-जनक प्रगति हुई है।

अतः हम कह सकते हैं कि संसार के देशों में जापान का उदाहरण एक ऐसा उदाहरण है, जो सर्वशक्तियों से हीन होते हुए भी, अपने व्यवसायीकरण की नीति और औद्योगीकरण की नीति द्वारा विनिमय सम्बन्धी बाधाओं, वैदेशिक-व्यापार सम्बन्धी अड़चनों तथा भुगतान-असन्तुलन की समस्याओं को दूर करते हुए अपनी मुद्रा (येन) को अवमूल्यित करके उसे सस्ता से सस्ता करके, आज विश्व के महान् औद्योगिक देशों में गिना जाने लगा है।

(३) फ्रांस और अवमूल्यन की नीति—

फ्रांस में दिसम्बर १९५८ ई० में फ्रांसीसी मुद्रा का अवमूल्यन का उदाहरण भी उल्लेखनीय है। विनिमय मूल्य में यह सुधार, जनरल देगाल ने किया जो राजनीतिक और आर्थिक पुनर्जागरण के प्रतीक बन चुके हैं। फ्रांस के अवमूल्यन से पहले एक के बाद एक फ्रांसीसी सरकारों ने भुगतान के असन्तुलन को ठीक करने के लिए अनेक उपाय किये। उदाहरण के लिए जैसे, 'राष्ट्रीय-स्वर्ण-ऋण" जो हमारी "स्वर्ण-बाण्ड-योजना" की तरह थी, आयात पर शुल्क में वृद्धि और निर्मित होने वाले

चीजों को सहायता। भारत की तरह फ्रांस में भी अवमूल्यन के ये विकल्प अपर्याप्त पाये गये। जनरल देगाल ने जब अवमूल्यन का निश्चय किया, तो उन्होंने इसके साथ अन्य बहुत से उपाय भी किये और ये उपाय भी ठीक वैसे ही थे, जैसे हमारे वित्त मन्त्री ने ५ जून को घोषित किये हैं। फ्रांस ने आयात में ढील दी और निर्यात को दी जाने वाली कृत्रिम सहायता हटा ली। फ्रांस ने अपनी मुद्रा की विनिमय की दर में जो सुधार किये, उससे अनेक मित्र देशों ने फ्रांस को बहुत मात्रा में ऋण दिये। दिसम्बर, १९५८ ई० के अवमूल्यन के बाद फ्रांस की अर्थ-व्यवस्था कभी नहीं पिछड़ी। फ्रांस का विदेशी मुद्रा कोष १९५९ में लगभग १ अरब डालर से बढ़कर १९६५ के अन्त में ६ अरब डालर से भी अधिक हो गया। अन्त में, हम यही कहेंगे कि अवमूल्यन की नीति साथ ही साथ अन्य उपायों ने फ्रांस की अर्थ व्यवस्था में जो सुधार उपस्थिति किये, वे अनुकरणीय है।

(४) युगोस्लाविया और अवमूल्लन की नीति—

युगोस्लाविया ने तो अपने आर्थिक सुधार का माध्यम मुद्रा के अवमूल्यन की नीति को ही माना है। १९५९ ई० में चीजों के दाम बहुत ही बढ़ जाने के कारण युगोस्लाविया में ही कठिनाई हुई। १९४८ में कमिनफार्म के देश युगोस्लाविया की अर्थ-व्यवस्था पर अनेक प्रकार का दबाव डाल रहे थे जिनसे उसकी कठिनाइयाँ और भी बढ़ती जा रही थीं। तब मार्शल टीटो की सरकार ने अपने दीनार का विनिमय मूल्य अन्य देशों की कीमतों के अनुपात में कम करना जरूरी समझा। अतः जनवरी, १९५२ में दीनार का अवमूल्यन किया गया। १ डालर के

बराबर ३०० दीनार कर दिया गया, जबकि पहले केवल ५० दीनार होते थे। दिसम्बर १९६० में युगोस्लाबिया ने विनिमय मूल्य में एक और सुधार किया। विनिमय की एक समान दर लागू की गई और एक अमरीकी डालर के बराबर ७५० दीनार दिये गये। इसके पहले सरकारी तौर पर एक अमरीकी डालर की कीमत ३०० दीनार थी, जबकि कुछ जिन्सों के निर्यात के लिए एक अमरीकी डालर १५०० दीनार तक के बराबर माना जाता था। अभी हाल में, पिछले साल १९६५ की जुलाई में युगोस्लाबिया को अपनी मुद्रा का फिर अव-मूल्यन करना पड़ा और एक अमरीकी डालर १२५० दीनार के बराबर हो गया। इन सुधारों के साथ-साथ युगोस्लाबिया की सरकार ने निर्यात के उद्योगों को सहायता देनी बन्द कर दी और विदेशी व्यापार पर जटिल प्रशासनिक नियन्त्रणों को भी ढीला कर दिया। इन सुधारों को कारगर करने के लिए अन्त में अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष और अन्य स्थान से भी युगोस्लाबिया की सरकार ने विदेशी ऋण लिया।

युगास्लाबिया के उदाहरण से अपने देश भारत की स्थिति बराबर मिलती-जुलती दिखलायी पड़ती है। ऊपर हमने इँग्लैंड और फ्रांस की अवमूल्यन के बाद की स्थिति का हाल देख लिया है, अर्थात् निर्यात व्यापार के लिए कृत्रिम सहायता का उठाया जाना, विदेशी व्यापार पर नियन्त्रणों में ढील और एक नई वास्तविक और दृढ़ ढाँचे की अर्थ-व्यवस्था का विकास करने के लिए मित्र देशों और बैंकों से सहायता लेना। आज हम भी भारत में ठीक इसी प्रकार के सुधार की बात करना चाहते हैं और इसके लिए हम विश्व-बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय विकास संस्था और

भारत सहायता संघ, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि तथा अन्य दूसरे देशों से पर्याप्त सहायता की अपेक्षा कर रहे हैं। यदि विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि विदेशी आर्थिक सहायता के द्वारा किसी भी देश का विकास कार्य और योजना कुछ आसान हो जाता है, परन्तु अवमूल्यन की नीति मूल रूप से विदेशी सहायता पर निर्भरता को समाप्त करने की एक महत्व पूर्ण नीति है। अवमूल्यन की नीति से देश के निर्यात होने वाली चीजों को विश्व के बाजारों में टिकाऊ बनाने में मदद मिल जाती है, जिससे अवमूल्यन करने वाला देश आत्म-निर्भर हो जाता है। इस काम में अवमूल्यन तभी सफल हो सकता है, जबकि उसके बाद देश में ऊँचे दर्जे की आर्थिक अनुशासन की नीति अपनायी जाय। उदाहरण के लिए युगोस्लाबिया में अवमूल्यन के बाद बढ़ती हुई महँगाई को रोकने के लिए उत्पादकता बढ़ाने और प्रशासन में कड़ी किफायत की नीति अपनायी गई थी।

(५) सोवियत रूस और अवमूल्यन की नीति—

सोवियत रूस ने भी, जहाँ मूल रूप से विदेशी व्यापार माल के बदले माल ले-देकर किया जाता है, अपनी अदृश्य कमाई बढ़ाने के लिए एक बार अपनी मुद्रा का अवमूल्यन किया। सन् १९५० ई० में जब रूबल की कीमत स्वर्ण के आधार पर तय की गयी, सरकारी तौर पर विनिमय की दर एक अमरीकी डालर के बदले ४ रूबल थी। मार्च, १९५७ में यह घोषणा की गयी कि अमरीकी डालरों और विशिष्ट विदेशी मुद्राओं को रूबल में बदलने पर १५० प्रतिशत तक के प्रीमियम दिये जायेंगे। १ जनवरी, १९६१ को एक नया 'भारी' रूबल

चालू किया गया जो पुराने १० रूबलों के बराबर था। वैसे विदेशों में इस नये रूबल का विनिमय मूल्य स्वर्ण के आधार पर घटा दिया गया। इसका मूल्य ६८७ मिली ग्राम स्वर्ण रक्खा गया जो पिछले रूबल के २२ मिली ग्राम के मूल्य का १० गुना नहीं था।

ऊपर अब तक हम यह देख चुके हैं कि बहुत से देश अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करने के बाद अपनी अर्थ-व्यवस्था को दृढ़ बनाने में सफल हुए हैं। लेकिन यह नहीं समझना चाहिए कि अवमूल्यन अपने आप से किसी देश के भुगतान—सन्तुलन को निश्चित रूप से सुधार ही देगा। उत्पादन और निर्यात को बढ़ाने के लिए, एक नया और वास्तविक आधार देने के लिए यह जरूरी है, कि देश में राजनीतिक स्थिरता हो। वार्षिक बजट का भी चतुराई और सावधानी से प्रबन्ध होना चाहिए।

(६) इन्डोनेशिया और अवमूल्यन की नीति—

इंडोनेशिया ही एक ऐसा देश है जिसे अवमूल्यन की नीति अपनाने से उसकी अर्थ-व्यवस्था को सुधारने में सफलता नहीं मिल पायी। दिसम्बर १९४९ में इन्डोनेशिया को स्वतंत्रता मिली और पहली बार फरवरी १९५२ में इन्डोनेशिया ने अपनी मुद्रा 'रूपिया' का अवमूल्यन किया। पुराने दरों पर एक अमरीकी डालर के बराबर ११.४ 'रूपिया' था, परन्तु अवमूल्यन के बाद यह दर एक डालर के बराबर ३१.७२ रूपिया हो गया। लेकिन इस अवमूल्यन से इन्डोनेशिया की अर्थ-व्यवस्था मजबूत नहीं बन पायी। कई वर्षों तक सेना पर भारी खर्च और अन्य अनुत्पादक खर्च से इन्डोनेशियाई 'रूपिया' की आन्तरिक

कीमत बहुत घट गयी। देश में इतनी मंहगाई आ गयी कि पिछले साल दिसम्बर १९६५ में फिर अवमूल्यन किया गया और तब विनिमय की दर १ अमरीकी डालर के बराबर दस हजार 'रूपिया' कर दी गयी। इस घटती हुई कीमत पर जरा विचार किया जाय—कहाँ १९५२ के ३१ 'रूपिया' और कहाँ अब दस हजार रूपिया! अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋण लेने का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि जनवरी १९६५ में संयुक्त राष्ट्र से निकलने के बाद इन्डोनेशिया अगस्त १९६५ में इस कोष से भी अलग हो गया था।

अब प्रश्न होता है कि अवमूल्यन की इस महान् नीति ने ग्रेट-ब्रिटेन, फ्रान्स, यूगोस्लाविया, सोवियत रूस की आर्थिक प्रगति में असाधारण और सराहनीय योगदान दिया है। क्या वैसी ही प्रगति और अर्थ-व्यवस्था सम्बन्धी समस्याओं का हल भारत में पूर्ण हो सकता है? जिन उद्देश्यों की अभिलाषा में भारत ने मुद्रा का अवमूल्यन करने का निर्णय किया है, क्या उसकी सारी अभिलाषाएं पूर्ण और प्रतिफलित हो जायेंगी? विभिन्न देशों की स्थितियों को देखते हुए तथा वहां पर अपनाये गये उपायों को यदि विचार किया जाय तो उत्तर 'हाँ' सम्भावित होगा। जैसा कि वित्त मंत्री और प्रधान मंत्री ने अपने भाषणों में आश्वासन दिया है, अवमूल्यन की नीति अपनाने के बाद भारत सरकार को चाहिए कि अपने प्रशासन में कठोरता और सख्ती की नीति अपनाये, साथ ही साथ प्रशासन पर अत्यधिक किये जाने वाले खर्च में किफ़ायत की नीति, अनुत्पादक कार्यों और विभिन्न प्रकार की योजनाओं पर रूपयों के दुरूपयोग की रोकथाम की नीति, मुद्रा-स्फीत को रोकने की नीति, मूल्य-वृद्धि

के नियंत्रण की नीति, जखीरेबाजी, चोरबाजारी, अधिकतम मुनाफाखोरी करने वालों के प्रति सरकार की कड़ी नजर और कार्यवाही की नीति, उद्योगों से उत्पादन-व्यय और लागत को कम करने की तथा साथ ही केन्द्रीय-राज्यकीय अधिकारियों, कर्मचारियों तथा जनता में चारित्रिक दृढ़ता की नीति को अपनाने से ही भारत में अवमूल्यन की नीति सफल हो सकेगी और तभी वर्तमान अवमूल्यन द्वारा लाभ प्राप्त हो सकेंगें। अन्यथा भारत को अवमूल्यन का महान् दुष्परिणाम और आर्थिक संकट को इंडोनेशिया की भाँति ही सहन करना पड़ेगा और सम्पूर्ण देश की आम जनता तबाह हो जायेगी।

अध्याय ८

अवमूल्यन और उसका भारतीय उद्योगों पर प्रभाव

अवमूल्यन की नीति और उद्योग-धन्धे—

अवमूल्यन और उद्योग-धन्धों की समस्या का समाधान हम नीचे दी गई कुछ सम्मतियों के आधार पर करेगें। सरकारी विज्ञप्तियों में बहुत सी बातों और युक्तियों को इस दिशा में काम में लाया गया है। फिर भी पक्ष-विपक्षों को देखना आवश्यक प्रतीत होता है।

(१) लोक-पथ—

अवमूल्यन से देश के कुटीर उद्योग-धन्धों (विशेष कर उत्तर प्रदेश में) को चौपट होने की आशंका है। यद्यपि राज्य सरकार अभी तक किसी निश्चित नतीजों पर नहीं पहुँची है कि अवमूल्यन

से राज्य के योजना-गत और गैर-योजनागत उद्योग-धन्धों में कितनी कमी करनी पड़ेगी, किन्तु भय है कि इससे राज्य के हथ-करघा तथा कुटीर उद्योग-धन्धों पर एक करारी चोट पड़ेगी। विशेषतः राज्य के चिकन, जरी के काम, पीतल के सामान और बर्तन बनाने का उद्योग, इत्र-उद्योग, तथा अन्य सामानों को जिनका निर्यात किया जाता है, उन सभी को भारी नुकसान पहुँचेगा।...... एक सरकारी प्रवक्ता का कहना है कि राज्य के विकास कार्यों को जारी रखना बड़ा मुश्किल दिखलायी पड़ता है।

(२) श्री आर० सी० साह—अध्यक्ष, अखिल भारतीय आयात-परिषद्—

रूपये की अवमूल्यन की नीति भारतीय उद्योग और व्यापार के लिए एक मुख्य संकट की आह्वाहन की नीति है जैसा कि देश की मौजूदा हालत बता रही है। यह हमारी अर्थ-व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने वाली नीति है।

(३) श्री सुरेन्द्र एन० पारीख-अध्यक्ष, बाम्बे मैटल एक्सचेन्ज लिमिटेड, बम्बई—

अवमूल्यन की नीति उद्योगों के लिए कच्चे माल की पूर्ति को संकट में डालने वाली नीति है। यह आयातित वस्तुओं को मंहगा कर देगी।

(४) प्रो० श्री आर० जे० तारापूरवाला—

अवमूल्यन की नीति अस्वस्थ अर्थ-व्यवस्था की नीति है।

(५) श्री चिमनलाल वी० मेहता-प्रसिद्ध उद्योगपति एवं अर्थशास्त्री--

अवमूल्यन से औद्योगीकरण की गतिविधि धीमी पड़ेगी। बाहर से आने वाले माल की कीमत काफी बढ़ जायेगी।

(६) एक फिल्म उद्योगपति—

अवमूल्यन की नीति विशेषतः रंगीन फिल्मों को बहुत अधिक प्रभावित करेगी। अब रंगीन फिल्मों के निर्माण की लागत अधिक पड़ेगी, क्योंकि रंगीन फिल्म उद्योग की सामग्री बहुत बड़ी मात्रा में आयातित होती है।

अभी हाल में अमेरिकी व्यापार मण्डल का एक मिशन भारत आया था जिसने इस बात का सर्वेक्षण किया कि अमरीका द्वारा भारतीय उद्योग में लगे पूँजी विनियोजकों का भविष्य कैसा होगा।

इसी प्रकार, रूस तथा पश्चिमी योरोपीय देशों में कुछ देशों में भी इसकी प्रतिक्रिया हुई है और वहां के पूँजी विनियोजकों के लिए भी ठीक ऐसी ही आशंका पैदा हुई है।

उपरोक्त आधारों और तथ्यों को देखते हुए निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय उद्योग-धन्धे तथा घरेलू-उद्योग धन्धों पर अब अवमूल्यन कीं नींति का कुपरिणाम ही पड़ेगा और इस नीति से उनके ठप्प और बैठ जाने की अधिक आशंका हो सकती है।

सरकार को इस समय आयात सम्बन्धो प्रशुल्क और करों में छूट और उदारता की नीति अपनानी चाहिए, जिससे देश के उद्योग-पतियों और व्यापारियों को अपने व्यापार और उद्योगों

के प्रति हतोत्साह न होना पड़े और सम्भावित जोखिम का भय दूर हो जाय। इस दिशा में लघु एवं छोटे उद्योगों को सरकार द्वारा सहायता भी दिया जाना चाहिए, जिससे हमारे छोटे उद्योग-धन्धे अधिक प्रोत्साहित हो सकें और वेरोज़गारी न फैल सके।

ऐसी बात नहीं है कि सरकार को इस बात का ख्याल नहीं है। सरकार भारतीय उद्योगपति और व्यापारियों को सहायता करने का आश्वासन दे चुकी है और साथ ही यह संकल्प भी कर चुकी है, कि देश का उत्पादन विशेषत: औद्योगिक उत्पादन अधिकतम हो। इस प्रकार अधिक उत्पादन से ही भारतीय निर्यात व्यापार अधिक से अधिक हो सकेगा और देश के अन्दर भी वस्तुओं की आवश्यकताएं पूरी की जा सकेंगी।

सरकारी नेताओं ने अपने निम्न कथनों में इस बात की चर्चा की है कि सरकार अधिकतम उत्पादन चाहतीं है—

(१) श्रीमनुभाइ साह –

अवमूल्यन की नीति को सफल बनाने की कुंजी देश के उत्पादन को अधिकतम करने में ही है।

(२) श्री वाई० बी० चौहान –

अवमूल्यन की नीति अधिकतम उत्पादन और विकास में सहायक होगी। अर्थ-विकास में विदेशी सहायताओं की प्राप्ति में मदद मिलेगी। अवमूल्यन की नीति से हमारे देश के घरेलू-उद्योग धन्धे प्रस्फुटित होंगे।

(३) श्रीएस० एन० राय, डिप्टी चैयरमैन, केन्द्रीय चाय उद्योग परिषद्—

अवमूल्यन की नीति अपनाने के बाद चाय उद्योग को अधिक लाभ की प्राप्ति होगी।

(४) श्रीत्रिलोकसिंह, सदस्य, योजना आयोग—

यातायात और परिवहन उद्योग के लागतों में कमी करने की नीति अवमूल्यन की नीति है।

उपरोक्त सम्मतियों और सरकारी विज्ञप्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हमारे देश के उद्योग-धन्धों को ठप्प हो जाने या बैठ जाने की ऐसी कोइ खास आशंका अभी दिखलायी नहीं पड़ती है। ऐसी आशा है कि निकट भविष्य में देश के उद्योग-धन्धों और कारोबारों को विकास करने का सुनहला अवसर मिलेगा, जिसमें वे अधिक से अधिक उत्पादन बढ़ाने की क्षमता रख सकेंगे।

●●●

अध्याय ६

अवमूल्यन और विदेशी सहायता

कौन व्यक्ति यह बात नहीं जानता कि किसी देश का आर्थिक विकास विदेशी सहायता के द्वारा कितने दिनों तक चल सकता है ? और कोई भी देश किसी देश को कब तक और कितनी अधिक राशि में अपनी सहायताएं दे सकता है ? वास्तव में, सरकारी विज्ञप्तियों के आधार पर यह अब निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भारत को अब विदेशी सहायता अधिक प्राप्त होगी, क्योंकि उसने विदेशियों की सलाह से अपनी मुद्रा (रुपये) का अवमूल्यन करने की नीति स्वीकार कर ली है। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि हम अपने सिक्के के मूल्य को, उसके अस्तित्व एवं इज्जत को घटा कर अधिक विदेशी सहायता

पाने के भागीदार हो सकें हैं। हमने रुपये के अवमूल्यन को नीति मान तो ली है, परन्तु उसके बदले हमें कितनी सहायता अभी तक प्राप्त हो सकी? भारत की तृतीय योजना समाप्त हो गयी है और चौथी योजना का प्रारूप भी प्रकाशित हो चुका है। वास्तव में हमें जो कुछ विदेशी सहायता मिलने की आशा है वह दिसम्बर १९६६ के भारत सहायता क्लब की मीटिंग के बाद ही बतायी जा सकती है। अभी पूरी सहायता मिलने का कोई पक्का आश्वासन एवं विश्वास भी नहीं है। हाल ही में अमरीकी कांग्रेस में यह सवाल उठाया गया था कि भारत को अनाज की सहायता क्यों दी जाय? और उसके लिए बहाना यह बताया जाता है कि भारत क्यूबा से चीनी व्यापार करता है और एक अमरीकी कानून के ज्ञाता का कहना था कि जो देश उत्तरी वियतनाम और क्यूबा जैसे देशों के साथ व्यापार करते हैं, उन्हें अमेरिका कोई सहायता न दे, खाद्यान्न भी न दे! विश्व बैंक, संयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य क्षेत्र जहाँ से विदेशी सहायता पाने की आशा में भारत ने अपनी मुद्रा का अवमूल्यन किया है, वह सब न जाने कब यह निश्चय करेंगे कि भारत को कब सहायता दी जाय और कितनी मात्रा में सहायता दी जाय। इसका खतरा बना हुआ है कि अवमूल्यन जैसे अपमानकारी शर्त को स्वीकार करने के बाद भी हमें विदेशों से पूरी सहायता समय पर न मिले। पाकिस्तान के हमले से अपनी रक्षा करने के लिए हमने शस्त्र उठाया और अमरीका ने उसे हमारा अपराध साबित किया और फलस्वरूप हमारी सब सहायताएं, विशेषतः खाद्यान्न की सहायता भी उसने बन्द कर दी। तो कौन जाने, किस क्षण फिर न ऐसा

प्रसंग सामने आ जाय और सहायता की बात पीछे रह जाय। वास्तव में, अमेरिका से मिलने वाली सारी सहायताएं दुविधा-जनक, संदेहास्पद अनिश्चित एवं राजनैतिक प्रभाव पर निर्भर करती हैं।

सितम्बर १६६६ से, भारत द्वारा अवमूल्यन की नीति अपनाये जाने के पश्चात् इसके प्रतिक्रिया स्वरुप कुछ पश्चिमी योरोपीय देशों ने तथा स्वयं अमेरिका ने अपनी आर्थिक सहायता शीघ्र पहुँचाने की नीति को पुनः जारी करने की आवश्कता का अनुभव किया है। अमरीका ने अपनी सहायता तुरन्त पहुँचाने की नीति में अनुदारता का भी अनुभव किया है।

सोवियत संघ रूस ने जो अभी तक अवमूल्यन से पहले अपनी सहायता की नीति में उदारता बरती, वह भी अवमूल्यन की नीति के बाद आशंकित हो उठा है। इसी हेतु प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी एवं भारत के तीन वरिष्ठ मंत्री मनुभाई शाह, श्री सी० सुब्रमनियम और योजना मन्त्री श्रीअशोक मेहता रूस के सोवियत संघ सरकार से सहायता-सम्बन्धी विचार विमर्श करने रूस गये थे।

इसी समय अमेरिकी सरकार के श्री ओरविल फ्रीमैन ने अपनी धारणा इस प्रकार व्यक्त की है कि भविष्य में भारत को कृषि-विकास हेतु अमरीकी वित्तीय सहायता देने की किसी भी नई योजना की संभावना अब नहीं है।

यद्यपि अब विदेशी अपनी सहायताएं हमें प्रदान करना चाहें (सहानुभूतिक ढंग से या चाहे कुटनीतिक तरीके से) तो हम ऐसी सहायता से सतर्क भी रहें, कि उनकी सहायताएं अपने में कौन सी राजनैतिक एवं स्थिति जनक सत्य रखती

हैं ? वास्तव में, अब हमें अपने औद्योगिक विकास के कार्यक्रम को स्वयं अपने ही बाहुबल के सहारे पूरा करना होगा ।

अवमूल्यन और विदेशी ऋण—

लन्दन के अर्थशास्त्रियों ने तथा वहाँ के कुछ समाचार पत्रों ने भारत द्वारा मुद्रा के अवमूल्यन की नीति तथा उसके भविष्य के बारे में भविष्यवाणी की है। गत २ जून को अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहायता कोष ने नई दिल्ली को एक संदेश भेजा था कि भारत को विदेशों से अधिक ऋण तभी प्राप्त हो सकता है, जबकि वह अपने रुपये का अवमूल्यन करे। भारत ने स्वयं अपनी इच्छा से (या परिस्थिति को देखकर) ऐसा नहीं किया, बल्कि अधिक विदेशी ऋण-हस्तगत करने के लोभ में, देश की प्रतिष्ठा को ताख में रखकर, विदेशी मित्रराष्ट्रों (इँग्लैण्ड एवं अमेरिका आदि) के दबाव में आकर अवमूल्यन की नीति को अपनाया। पिछले महीनों में योजना मन्त्री श्री अशोक मेहता ने भी चतुर्थ योजना के लिए ऋण प्राप्त करने हेतु अमेरिका व अन्य देशों की यात्रा की थी। और इसी समय भारत को विदेशी सहायता एवं ऋण देने की मित्र-राष्टों तथा विश्व बैंक ने यही शर्त रखी थी।

वास्तव में यह रुपये का अवमूल्यन नहीं, बल्कि सरकार के द्वारा देश का अवमूल्यन किया है। स्वयं भारत का अवमूल्यन हुआ है, अर्थात् डालर, पौंड तथा रूबल क्षेत्रों में भारत की प्रतिष्ठा घट गयी है। ५ जून की रात में भारतीय रुपये का मूल्य ३६.५ प्रतिशत घट जाने से भारत अब विदेशी साहूकारों

का ड्यौढ़े का देनदार हो गया। अभी तक हम लगभग ३,८००
करोड़ रुपये के कर्जदार थे और अब एक रात्रि में हम ६,०००
करोड़ रुपये के कर्जदार हो गये।

दिसम्बर १९६५ तक भारत पर विभिन्न देशों का इस प्रकार ऋण था :—

तालिका : भारत पर विदेशी ऋण (१९५१-१९६५)

देश	(राशि करोड रुपये में)
१—संयुक्त राज्य अमेरिका	१,२५१
२—सौवियत संघ रूस	४८४
३—पश्चिमी जर्मनी	४४५
४—ब्रिटेन	३४५
५—जापान	१७३
६—चैकोस्लाबिया	६३
७—इटली	६१
८—फ्रान्स	५७
९—कनैडा	४६
१०—पोलैंड	४०
११—नादरलैंड	२२
१२—युगोस्लाबिया	२१
१३—स्वी टजरलैंड	१६
१४—बेलजियम	११
१५—आस्ट्रेलिया	८
१६—डेनमार्क	२.४१

१७—स्वीडन	२.२१
१८—विश्व बैंक	४६२
१६—अन्तर्राष्ट्रीय विकास संगठन	२७८
योग	३७६७.६२

ज्ञातव्य है कि इन सारे ऋणों में केवल ५ प्रतिशत ऋण ब्याज-मुक्त है। २५ प्रतिशत तक २.५ प्रतिशत तथा २६ से ६० प्रतिशत तक लगभग ४ प्रतिशत और ६० से ऊपर पर ५ प्रतिशत ब्याज देना पड़ता है। इस प्रकार दिसम्बर १६६५ तक दिये गये ऋणों को ही प्रतिवर्ष एक अरब से अधिक ब्याज देना पड़ता है।

वास्तव में, अवमूल्यन से हमारा विदेशी कर्ज ड्योढ़ा हो गया और साथ ही साथ ब्याज भी अब ड्योढ़ा देना पड़ेगा। **भारत में अभी तक जो बालक पैदा होता था, वह लगभग ६० रुपये का विदेशी कर्जदार होकर जन्मता था और अब ६ जून १६६६ ई० के बाद (अवमूल्यन-नीति के बाद) जो जन्मेगा वह ९० रुपये का ऋणी होकर पैदा होगा। क्या भारत की अर्थ व्यवस्था इसी प्रकार रक्खी जायेगी कि हम विदेशी ऋण-भार को ढोते रहें ?**

सरकार की सम्भावनाएँ हैं कि अवमूल्यन के बाद विदेशों से अधिक ऋण हमें प्राप्त होंगे। असल में होना यह चाहिए कि हम और अधिक विदेशी ऋण प्राप्ति के आकाँक्षी न हों तथा विदेशी सहायता पर अपना विकास करने की बात देश अधिक

नहीं सोचे। देशके विकास कार्य में हम अपनी स्वदेशी पूँजी का ही अधिक सहारा लें। जनता और सरकार दोनों को ही इस दिशा में संयम और मितव्ययिता के सिद्धान्त पर चलना चाहिए। संयम और मितव्ययिता का सिद्धान्त ही हमें इस दिशा में शक्ति दे सकता है। सरकार को अपने भारी खर्चों के मदों में, जहाँ धन पानी की तरह व्यय किया जाता है, उसमें बड़ी भारी कटौती करनी चाहिए और साथ ही जनता भी (उपभोक्ता भी) फैशन के नाम पर अपने सीमित धन का दुरुपयोग न करें। बाहर से मँगाई जाने वाली कीमती विदेशी मोटरों, रेफ्रिजियेटरों, विलास एवं वैभवपूर्ण अन्य वस्तुओं पर जनता यदि खर्च न करे तो हमारे देश की विदेशी मुद्रा की बचत हो सकती है। इसी प्रकार सरकार भी बड़ी, बड़ी एवं बेकार की योजनाओं को चलाने का काम तुरन्त बन्द कर दे। तभी विदेशी ऋण एवं सहायता लेना कम हो सकेगा।

●●●

अध्याय १०

अवमूल्यन एवं भारत का विदेशी व्यापार

(१) अवमूल्यन की नीति और निर्यात-व्यापार

अवमूल्यन से भारत को निर्यात बढ़ाने और विदेशी मुद्रा की कमी को दूर करने में किस प्रकार मदद मिलेगी ?

देश में चीजों के वर्तमान ऊँचे दामों को देखते हुए रुपये का विदेशी मूल्य घटाये बिना जितना निर्यात—इस समय हो रहा है उतना भी कायम नहीं रखा जा सकता था। यही मुख्य बात है। अवमूल्यन से पहले तक हम कुल ८०० करोड़ रुपये का विदेशी निर्यात करते थे। वह भी इसलिए कि हम अपनी चीजों का दाम कृत्रिम रूप से घटा कर उन्हें बाहर बेंचते थे। केवल साइकिल, सिलाई की मशीन आदि सामान को ही नहीं,

सूती कपड़ा और खनिज के निर्यात के लिए भी विशेष रूप से सहायता दी जाती थी। यहाँ तक कि भारत के मुख्य निर्यात पदार्थों—चाय और पटसन के निर्यात के लिए भी सहायता दी जा रही थी। कपड़े का निर्यात पहले से होता था, फिर भी इसके निर्यात पर ३० से ४० प्रतिशत तक की सहायता दी जा रही थी। यह सहायता तट कर और अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के विरुद्ध पड़ती थी और अन्य दूसरे देश भी इसके जवाब में ऐसा ही कर सकते थे। मान लिया जाय, अगर हम यह सहायता न देते तो, हमारा निर्यात ७ अरब रुपये या इससे भी कम रह जाता और चौथी योजना में हम ३५ अरब रुपये से अधिक निर्यात न कर पाते, जबकि हमारा लक्ष्य ५१ अरब रुपये का था। निर्यात इतना कम होने पर हमें विदेशों से ४ हजार से ४८ सौ करोड़ रुपये तक की विदेशी मुद्रा न मिल पाती और हमारी सारी योजना ही गड़बड़ हो जाती।

इसके विपरीत, यदि हम रुपये का विदेशी मूल्य बदल दें, तो हमारा निर्यात ५१ अरब रु० से भी अधिक हो सकता है। अवमूल्यन से पहले निर्यात को बढ़ावा और सहायता देने की जो योजनाएँ चालू थी, उनके द्वारा यह लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता था। इस प्रकार की योजनाएँ स्थायी नहीं मानी जा सकतीं। इसलिए निर्यातक और निर्माता भी इसी उधेड़-बुन में लगे थे कि जो लाभ मिल रहा है उसे प्राप्त कर लिया जाय। वे अपने कारोबार को स्थायी तौर पर जमाने का प्रयत्न नहीं करते थे। अन्त में, फल यह होता था कि जितनी सहायता दी जाती थी उतना लाभ नहीं हो जाता था। दूसरे, सहायता हमेशा उन्हीं चीजों को नहीं दी जाती थी, जिनके निर्यात की

स्थायी सम्भावना रहती थी। इस तरह यह तरीका दोषपूर्ण था और इससे प्रशासन में खराबी आती थी, खास कर नीचे के कर्मचारियों में निर्यात बढ़ाने के लिए निर्यात के बदले कुछ आयात की अनुमति देने की योजना में भी खराबियाँ थीं। जब तक जरूरी सामान के आयात पर कड़ी रोक थी तभी तक आयात की हुई चीजों को ऊँचे दामों पर बेंचकर मुनाफा कमाया जा सकता था और निर्यात से होने वाला घाटा पूरा किया जा सकता था। लेकिन आवश्यक चीजों के आयात पर भी हमेशा के लिए तो रोक नहीं लगायी जा सकती थी और न तो इस योजना के अन्तर्गत कम आवश्यक वस्तुओं के अधिक आयात की अनुमति ही जा सकती थी। इसलिए इस तरीके से भी ज्यादा दिनों तक काम नहीं चल सकता था। अतः सरकार ने अवमूल्यन करने का निश्चय किया।

जैसे-जैसे समय बीतेगा, अवमूल्यन के प्रभाव से निर्यात की आय और बढ़ेगी। इसका एक कारण यह है, कि, अवमूल्यन के बाद निर्यात होने वाली चीजों के कारखानों को ज्यादा लाभ होने लगेगा और उससे लोग इन उद्योगों में अधिक धन लगायेगें। निर्यात बढ़ने से आत्म-निर्भरता की भावना भी देश पैदा होगी, और देश औद्योगिक विकास की दृष्टि से आत्म-निर्भर हो जायेगा। उसे अन्य देशों की अपेक्षा नहीं रह जायेगी। इसलिए देश के वैदेशिक व्यापार के सन्दर्भ में हमें अवमूल्यन के तात्कालिक और स्थायी, दोनो प्रकार के प्रभावों पर विचार करना आवश्यक है।

हमारे देश में जिन विदेशी व्यापारियों ने अपनी पूंजी विभिन्न कारोबार में विनियोजित कर रखी है, उसका लाभ,

रायल्टी और मूलधन आदि उन्हें पहुँचाया जाता है। इसमें भी अवमूल्यन से हमें निश्चित फायदा ही होगा। उदाहरण के लिए जो विदेशी व्यापारी अब तक रू० ४.७५ कमाता था वह उसके बदले एक डालर अपने देश भेजता था अब उसे ७.५० के बदले में एक डालर भेजना पड़ेगा। अर्थात् इस मदद से हमें १५ से ५० करोड़ रूपया तक की विदेशी मुद्रा की बचत हो सकती है। आगे अधिक विदेशी पूंजी नियोजन बढ़ने पर और भी फायदा उठाया जा सकता है।

विदेशी मुद्रा का अवैध रूप से जो लेन-देन हो रहा था अब अवमूल्यन हो जाने से कम से कम कुछ अंश तक वैध रूप में होने लगेगा। उदाहरण के लिए अब तक जो "यात्री-चैक" चोरबाजार में बिकते थे वे अब काफी हद तक बैंकों में बेंचे जायेंगे और इससे वह विदेशी मुद्रा सरकार को मिलेगी। यही बात विदेशों में रहने वाले भारतीयों पर भी लागू होती है। उनके द्वारा भेजे जाने काले धन पर भी यही बात लागू होगी। आयात और निर्यातकों में विदेशों मुद्रा रखने की प्रवृत्ति भी कम होगी।

अभी तक हमने अवमूल्यन द्वारा निर्यात की सम्भावनाओं का ही विचार किया है। परन्तु यदि हम अपने आयात और निर्यात की सही स्थिति पर विचार करे, तो, निष्कर्ष कुछ दूसरा ही निकलता है। प्रश्न यह होता है कि क्या हम अपने निर्यात को अधिकतम कर सकते हैं ? वास्तव में सरकारी आँकड़ों को देखने से यह पता है कि जहाँ हमारे निर्यात की गति धीमी है वही आयात की गति में अधिक तीव्रता है इस प्रकार आयातित माल भुगतान की समस्या पेचीदी बनती जाती है

और फलस्वरूप हमारा शोधनाधिक्य असन्तुलित होता जाता है। परिणामतः विदेशी मुद्रा की कमी एवं व्यापार का घाटा बढ़ता जा रहा है। १९६५ ई० में कुल ८०८ करोड़ रूपये का निर्यात किया गया। अर्थात् १९६४ ई० की तुलना में उसमें कोई भी वृद्धि नहीं हुई। परन्तु हमारे आयात में ४८ करोड़ की वृद्धि होकर १३८३ करोड़ हो गयी और इस प्रकार घाटा बढ़कर ५२५ से ५७५ करोड़ रूपये का हो गया।

निर्यात के लिए हमारी सरकार विशेष सुविधाएं उपलब्ध नहीं करा रही हैं, जिससे उत्पादित वस्तुओं के लागत में तीव्र गति से वृद्धि होती जा रही है। परिणाम स्वरूप निर्यात की क्षमता कम होती जा रही है। इतना ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में हमें अपने प्रतिद्वन्दी देशों से कड़ी प्रतियोगिता करनी पड़ रही है। साथ ही सरकार द्वारा अनेकों प्रकार के अप्रत्यक्ष करों को लगाये जाने के कारण उत्पादित वस्तुओं का मूल्य अधिक बढ़ गया है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में हमारी चीजों का दाम मंहगा पड़ता है, जबकि बाहरी देश हमारे मूल्यों से कम में अपनी चीजें बेंचने में समर्थ होते हैं। इसका हमारे देश के निर्यात व्यापार पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। वास्तव में, देश के औद्योगिक उत्पादन में भी कमी हो रही है। सन् १९६३ ई० में वह ८ प्रतिशत थी और १९६४ ई० में ७.४ तथा १९६५ ई० में घटकर ६ प्रतिशत रह गया है। इसी प्रकार अधिक करों के द्वारा निर्यात को प्रोत्साहित करने के स्थान पर अप्रत्यक्ष-करों द्वारा उत्पादन को अधिकाधिक मंहगा बनाया जा रहा है। १९५०-५१ ई० में उत्पादन करों से केन्द्रीय सरकार को ६१.६३ करोड़ रूपये की आय थी। वह १९५५-५६ ई० में बढ़कर १४२.४३ करोड़

रुपये हो गयी। और १९६५-६६ ई० में ४०९.४१ करोड़ रुपये हो गयी। इतनी ही नहीं, नये बजट १९६६-६७ ई० के अनुसार केन्द्रीय सरकार इससे १०११.३८ करोड़ की आय प्राप्त करने की अभिलाषा रखती है। क्या अवमूल्यन की नीति के आधार पर यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि हमारे देश का निर्यात-व्यापार प्रोत्साहित होगा? सम्भवतः ऐसी परिकल्पना अभी असम्भव है। यह तो कुछ वर्षों बाद-चौथी या पाँचवी योजना के बाद निश्चित रूप से पता लग सकेगा।

फिर भी यदि हमारी सरकार निर्यात सम्बन्धी अनेक अप्रत्यक्ष शुल्क और करों की छूट और ढिलाई प्रदान कर दें तो सम्भव है अधिक निर्यात की समस्या को हल करना सरल हो जाये। अवमूल्यन की नीति ठीक ऐसी ही नीति है जिससे निर्यात व्यापार वृद्धि पा सकेगा, क्योंकि ऐसी नीति अपनाने से निर्यातकों को अपनी पूँजी के विनियोजन में भय की आशंका नहीं रह जायेगी। उन्हें अपने पूँजीगत जोखिम की भी सम्भावना अब पहले की अपेक्षा कम हो जायेगी।

(२) अवमूल्यन की नीति और आयात-व्यापार

अवमूल्यन हो जाने से भी भारत का आयात कुछ वर्षों तक कम नहीं होगा। आयात पर पहले ही से कड़ा नियंत्रण है। वैसे भी आयात का घटना वांछनीय नहीं है। अवमूल्यन से आयातित चीजों का दाम और बढ़ जायेगा और उसके कारण आयातक अब जो बहुत ज्यादा मुनाफा कमा रहे थे, वह कम हो जायेगा। मुनाफे की यह रकम चुराकर अथवा छिपाकर रखी जाती थी जिससे उन्हें आयकर न देनी पड़े। अब ऐसा करना सम्भव नहीं होगा।

यही नहीं, आयात का दाम बढ़ने के कारण विदेशी सामान का प्रतिस्थापन हमारी देश की निर्मित स्वदेशी वस्तुएँ करने लगेगीं। साथ ही ऐसे आयातीत वस्तुओं के बदले में प्रतिस्थापन वस्तुएँ के निर्माण के लिए देश के उद्योगपतियों को प्रोत्साहन मिलेगा। आजकल आयात पर कड़े प्रतिबन्ध और सीमा शुल्क लगाने के बावजूद लोग देशी माल की अपेक्षा विलायती माल ज्यादा पसन्द किया करते थे। अब आयातीत माल और भी महंगा हो जायेगा, तो अवश्य ही स्वदेशी माल की मांग देश के लोगों में बढ़ेगें। उद्योगपति ऐसे उद्योगों के स्थापन पर अपनी पूँजी लगाने में अधिक साहस करेंगे। अगर हमारे देश को यथेष्ट विदेशी सहायता प्राप्त होती रही, तो हम अपने कारखानों के लिए कच्चा माल, मशीनों के पुर्जे आदि का अधिक आयात कर सकेगें। अवमूल्यन से जब आयात का दाम बढ़ जायेगा तो आयात की अनुमति के लिए उतनी छानबीन की जरूरत भी न रहेगी और अर्जियां जल्दी निबटायी जा सकेगी। इससे देश के कारखानों में एक दूसरे में होड़ और प्रतिद्विन्दता की भावना आ जायेगी और जिससे और अधिक तथा अच्छा माल तैयार होगा।

अब आयात के इस बढ़ोत्तरी पर विचार किया जाय। क्या वास्तव में हम मुक्त आयात की नीति अपना सकते हैं? यह बात सम्भव नहीं। वास्तव में रुपये के अवमूल्यन की नीति विदेशी सरकारों की प्रेरणा तथा आदेशों से अपनायी गयी है। यह विदेशी सरकारों की ही दोहरी शोषण नीति है। एक ओर तो वे अपने सामानों की कीमत का भुगतान हमसे ड्योढ़े में करायेगें और अपने माल का बाजार हमारे देश में

स्थापित करेंगे। हमारी निजी इच्छा से नहीं, वरन् उन्हीं की इच्छा से उनका बेकार माल जिसकी अन्य देशों के लिए कोई उपयोगिता नहीं है, वह हमारे देश के गले जबरदस्ती बांधा जायेगा। ऐसा निर्मित माल अथवा वस्तुएँ भारत की गरीब के जनता के लिए उन्हें ड्योढ़े मूल्य में खरीदना असम्भव होगा। इस नीति से सरकार तथा बड़े उद्योगपतियों के बड़े कारखानों का काम अधिक चलेगा। उन विदेशी निर्माताओं को अधिक लाभ होगा जो अब भारत का गला दबाकर ड्योढ़े दाम पर उनके हाथ अपना माल बेचने में समर्थ होंगे।

कुछ भी हो, हमें अपने आयात व्यापार में अधिकतम कमी करने की नीति को अपनानी पड़ेगी। यदि यह आशंका होती है कि हमारा आयात-व्यापार और अधिक बढ़ जायेगा, तो भी, हमें भय करने की जरूरत नहीं है। हमारा आयात व्यापार कम भी हो सकता है, जैसे कि हमारे राजस्थान के मुख्य मंत्री श्री सुखाडिया ने अभी कहा है कि हम बढ़ते हुए आयात में भी कमी कर सकते हैं, यदि हम अपने देश के खनिजों की खोज करें। देश में खनिज पदार्थों की कमी है। ऐसी बात नहीं कि खनिज पदार्थ नहीं हैं, बल्कि उनका तकनीकी ढंग से खोज-बीन का काम पिछड़ा है। यदि सचमुच हम क्षेत्र में सफलता प्राप्त करलें, तो हमें इस दिशा में अपूर्व सफलता प्राप्त हो सकती है। तब हम विदेशों पर खनिज-पदार्थों के लिए उतने अधिक आश्रित नहीं रहेंगे।

आयात की बढ़ोत्तरी से हमें घबड़ाना नहीं चाहिए। जापान का आर्थिक इतिहास देखिए। जापान ने औद्योगिक विकास में महान् सफलता प्राप्त की है, जब कि जापान सारा आयात-

व्यापार खाद्य-पदार्थ तथा खनिज-पदार्थों से ही सम्बन्धित था। जापान के लोग अपने देश को व्यापार में बढ़ाने से हिम्मत न हारे।

आज भारत की स्थिति ठीक वैसे ही है जैसे जापान की। भारत की भी आयात-व्यापार जापान ही की तरह है। वैदेशिक-ऋण का बोझ देश के लिए एक महान् समस्या बन गया है। फिर भी हमारी सरकार को और देश की जनता और आयातक को घबड़ाना नहीं चाहिए, बल्कि उत्पादन की मात्रा को अधिकतम करने का कृतसंकल्प करना चाहिए। सरकार को आयात सम्बन्धी छूट और उदारता और निजी सहायताएं और अधिक प्रदान करनी चाहिए; जिससे यथोचित आयात हो सके, क्योंकि कड़े प्रतिबन्धन की नीति से आयातीत में चोर-बाजारी और काला-बाजारी को प्रश्रय मिलता है और जिसका अनुचित फायदा समाज के कुछ वर्गों को होता है।

आयात में उदारता की नीति अपनाने से उद्योगपति अपने आयात की खुलकर वृद्धि करेंगे और एक समय ऐसा आयेगा जब कि हम अनावश्यक समझे जाने वाले आयात के सामानों को स्वयं ही मांग न करेंगे। अतः आयात की वृद्धि वास्तविक वृद्धि नहीं है, यह अस्थायी कुछ ही समय के लिए है।

सरकार ने देश के कारखानों को आवश्यक कच्चे माल, पुर्जों और उपकरणों की सप्लाई बनाये रखने का जो दृढ़ संकल्प किया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार वास्तव में यह चाहती है कि देश में कारखानों की उत्पादन क्षमता में अधिकतम वृद्धि हो सके, जिससे देश को निर्यात-व्यापार के लिए पर्याप्त मात्रा में सामान उपलब्ध हो सके।

● ● ●

अध्याय ११

अवमूल्यन की नीति और संभावित लाभ-हानि

सैद्धान्तिक दृष्टि से अवमूल्यन की नीति से सम्भावित लाभ हानि का विवेचन करना बहुत ही महत्वपूर्ण है। वास्तव में सरकार ने अवमूल्यन की नीति का सहारा ऐसे समय लिया है, जबकि भारतीय अर्थ-व्यवस्था बीच में भंवर में डूब-उतरा रही थी। सरकार के सामने ऐसी स्थिति में अन्य कोई सहारा नजर न आया। वैदेशिक ऋण का बोझ अधिक होता जा रहा था। भुगतान असन्तुलित था। देश का निर्यात बहुत ही कम था और उसकी अपेक्षा आयात अधिक किया जा रहा था। वस्तुओं का उत्पादन बहुत कम हो रहा था। अतः सरकार ने इस अवमूल्यन की नीति को अपनाया।

वास्तव में, यदि अवमूल्यन से देश का नियत बांढ़ जाये (जैसा कि सोचा गया है) तो इससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी, एवं इसका प्रभाव देश के लोगों के रहन-सहन पर अच्छा पड़ेगा। देश में औद्योगिक आत्म-निर्भरता की भावना आ जायेगी। अभी तक हम बहुत सी दुर्लभ विदेशी वस्तुओं पर निर्भर रहते आये हैं और विदेशी हमसे मनचाही उनका भुगतान लेते रहे हैं। अभी भी देश में कुछ वस्तुएँ कम हैं—जैसे अनाज एवं अन्य कृषि-सामग्री, रासायनिक द्रव्य, मशीनों के कल-पुर्जे, बिजली के सामान आदि। इसके लिए हमें विदेशों का मुँह ताकना पड़ता है।

अवमूल्यन की नीति से देश में सच्ची स्वाधीनता और आर्थिक स्वतन्त्रता स्थापित होगी, क्योंकि इससे कुछ ऐसे प्रभाव पड़ेंगे, जिससे देशमें स्वदेशीपन को बल मिलेगा। यह एक स्वतन्त्र राष्ट्र के लिए महान् गर्व की बात होगी। हम सम्भवतः महात्मा गांधी के स्वप्न को साकार रूप प्रदान करने में समर्थ हो सकेंगे। हम विदेशी वस्तुओं का तिरस्कार स्वयं करने लगेंगे। अभी तक हम विदेशी माल की प्रशंसा ही किया करते थे।

लघु और कुटीर उद्योग-धन्धों का सुनहरा विकास होगा। वास्तव में देश के औद्योगीकरण करने में सरकार की यह नीति यदि सुचारू रूप से बरती गई तो, अपना बहुत काम कर दिखायेगी। आधुनिक जापान का बड़े से बड़ा उद्योग अधिकांश में लघु-उद्योग के रूप में जापान के लोगों के घरों में किया जाता है। उदाहरण के लिए टार्च बनाने के उद्योग को ही लीजिए। उसके विभिन्न हिस्से और काम-बल्ब, निकिल पालिश, टार्च बाडी, पेन्टिंग का काम जापान के घर-घर में

लोगों द्वारा किया जाता है। इसी प्रकार दियासलाइ का उद्योग तीलियाँ बनाने का काम, उन पर फासफोरस एवं अन्य मसाला लगाने का काम, माचिस-बाक्स बनाने का काम, लेबिलिंग और पैकिंग का काम जापान के घर-घर में किया जाता है। इसी प्रकार से खिलौने का उद्योग, रेशमी और सूती कपड़े का उद्योग, मशीनरी का उद्योग आदि सभी गृह-लघु-उद्योग के रूप में किया जाता है। इसके अतिरिक्त अवमूल्यन की नीति से निम्नांकित अन्य लाभ भी हो सकेंगे—

(१) देश के सर्वोत्तम हित और कल्याण में वृद्धि

अवमूल्यन की नीति से यह अवश्य सम्भावित है, लेकिन शुरू में देश के सामने कठिनाइयाँ और मुसीबतें आयेगीं जिसे उन्नत भविष्य की आशा करते हुए देश के लोगों को अवश्य सहना पड़ेगा।

(२) देश में बेरोजगारी और बेकारी की समस्या

आज देश में बेरोजगारी की समस्या बहुत अधिक फैल रही है। देश में बड़े-बड़े उद्योगों के चालू हो जाने पर यह समस्या आसानी से दूर हो जायेगी।

(३) देश की बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या

यह समस्या भी बहुत अंशों तक आसानी से हल हो जायेगी, क्योंकि यदि भविष्य में लोगों के रहन-सहन में परिवर्तन होगें, तो बढ़ती जनसंख्या के लिए भोजन-वस्त्र का प्रबन्ध सरलता से हो सकेगा तथा बच्चे भी सम्भवत: कम पैदा होगें।

(४) कृषि उत्पादन में वृद्धि

अवमूल्यन की नीति से इस दिशा में अवश्य प्रगति होगी। उत्पादन कम होने के कारण हम अभी तक खाद्यान्न का विदेशों से आयात करते रहे हैं, परन्तु यांत्रिक-अभियान्त्रिक विकास करके कृषि उत्पादन को वृद्धि की जा सकती है। चौथी योजनामें अब सरकार का लक्ष्य ही इस ओर मुख्य रूपसे केन्द्रित हो गया है।

(५) विकट मंहगाई का जाल

वर्तमान महगाई के विकट जाल को हम देश का उत्पादन बढ़ा कर अवश्यमेव काट सकते हैं। मंहगाई और मूल्य-वृद्धि के कुचक्र से जनता को मुक्त करने में अधिक निर्यात एवं अधिक उत्पादन करने से अधिक सहूलियत मिलेगी। अभी तो कुछ महीने मँहगाई बढ़ेगी ही, परन्तु आशा की जाती है कि क्रमिक मँहगाई में कमी होगी। यह स्मरण रखना चाहिए कि मँहगाई तो अवमूल्यन के अलावे अन्य कारणों से पहले भी बढ़ी हुई थी।

(६) वैदेशिक व्यापार-भुगतान की समस्या

सरकार वैदेशिक व्यापार की भुगतान की अन्तुलन को आसानी से सन्तुलित किया जा सकता है। इतना ही नहीं देश को विदेशी-ऋण के बोझ से क्रमिक मुक्त किया जा सकता है।

(७) राष्ट्रीय पूंजी का राष्ट्र में संचयीकरण

इस नीति से राष्ट्र का विदेशों में जाने वाला बहुत साधन हमारे ही राष्ट्र में संचित हो जायेगा, और इस प्रकार हमारा देश धनवान् हो सकता है।

अवमूल्यन मे हानि

यह स्मरण रखना चाहिए कि ऊपर दिये हुए सभी लाभ तभी हो सकेगें जब कि हम इस नीति का प्रयोग उचित ढँग से करें। अन्यथा इस नीति से दो बड़ी हानियाँ भी हो सकती हैं —

(१) वास्तव में, यदि प्रशासन में फजूलखर्ची की नीति बरतेंगे, तो अवश्य ही हमें इसका विपरीत फल मिलेगा।

(२) निर्यात-शुल्कों और करो में कठोरता की नीति अपनाने से उद्योग-धन्धों पर बहुत बुरा असर पड़ेगा, जिसका प्रभाव उद्योग विशेष पर ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण देश के लिए हानिकारक हो सकता है।

यदि हम इस नीति को अपनाने में अपने प्राचीन आदर्शों (जैसे स्वदेशी, एवं आत्म-निर्भरता) आदि को भुला देंगे तो अवश्य ही हानि उठानी पड़ेगी। सरकार और जनता के बीच सहयोग और विश्वास की भावना स्थाई और दृढ़ रूप से होना चाहिए। सरकार और जनता अपने कर्त्तव्यों की अवहेलना करती है, तो निश्चय ही अवमूल्यन के दुष्परिणाम सरकार और जनता दोनों को भुगतने पड़ेगें।

इस दिशा में सबसे बड़ी बात तो संयम और मितव्ययिता की नीति है—जो अपना बहुत बड़ा असर करेगी। इसकी उपेक्षा करने से ऐसे समय सम्पूर्ण राष्ट्र को महान् हानि भुगतनी पड़ेगी, जिसका असर बहुत भयंकर हो सकता है।

● ● ●

अध्याय १२

अवमूल्यन के नीति के पक्ष-विपक्ष

(क) पक्ष में तर्क—

अवमूल्यन की नीति एक सही नीति है इस सम्बन्ध में निम्नांकित तर्क दिये जा सकते हैं :—

(१) देश की मुद्रा का विदेशी मूल्य कम हो जाने पर यदि अन्य बातें समान रहें, तो देशी वस्तुएँ विदेशों में सस्ती और बिदेशी वस्तुएँ अवमूल्यन करने वाले देश में महँगी पड़ेगी। ऐसी नीति अपनाने से देश के निर्यात को प्रोत्साहन मिलता है और उसकी बढ़ोत्तरी होती है। फलस्वरूप यदि देश का भुगतान शेष प्रतिकूल होता है, तो वह कुछ समय बाद ठीक हो जाता है। इस समय देश का भुगतान शेष प्रतिकूल है। लगभग १४००

करोड़ रुपये का सामान प्रतिवर्ष आयात किया जाता है, परन्तु निर्यात केवल ८२० करोड़ रुपये का होता है। इस प्रकार निर्यात-व्यापार द्वारा केवल ६० प्रतिशत आयात वस्तुओं की पूर्ति होती है। इस असन्तुलन को दूर करने के लिए भारतीय रुपये का अवमूल्यन करना श्रेयष्कर प्रतीत हुआ। अवमूल्यन की नीति से निर्यात सम्बन्धी उद्योगों को काफी प्रोत्साहन मिलेगा एवं देश में उत्पादन बढ़ेगा तथा नये-नये कल-कारखाने खुलेंगे। परिणामस्वरूप भारत में रोजगार के बढ़ने से बेरोजगारी तथा बेकारी की समस्या का भी हल अधिक अंशों में हो सकेगा और पूँजी का विनियोजन भी देश में बढ़ जायेगा।

(२) विश्व बैंक एवं अन्य संस्थाओं ने भारतीय रुपये के अवमूल्यन की सलाह दी है।

(३) भारत ने दुनियाँ में अपने रुपये का जो विनिमय मूल्य निर्धारित किया था उसका उतना मूल्य कई प्रमुख देश नहीं लगाते थे। भारत के रुपये को अमरीकी डालरों में भुनाते समय १९४९ ई० में जितनी कीमत दी जाती थी, आज इससे २१ प्रतिशत कम दी जाती थी। इसी प्रकार ब्रिटेन के पौंड और पश्चिम जर्मनी के मार्क में ८.३ प्रतिशत तथा ३० प्रतिशत कम मिलता है। इसलिए रुपये का अवमूल्यन करना ही उचित समझा गया।

(४) ब्रिटेन और अमेरिका भी (जो हमारे ऋणदाता हैं) रुपये के अवमूल्यन करने की सलाह देते रहे हैं।

(५) १९४९ ई० में जब ब्रिटेन ने अपने स्टर्लिङ्ग का अवमूल्यन किया था तो भारत ने भी अन्य देशों के साथ उसका अनुकरण किया था। ऐसा करने से भारत को लाभ हुआ था। इसीलिए,

यदि इस समय भी रुपये का अवमूल्यन कर दिया गया तो देश के हित और कल्याण में अधिक वृद्धि होगी।

(ख) विपक्ष में दिये गये तर्क—

अब हम अवमूल्यन के विपक्ष में दिये गये तर्कों को ध्यान दें जो इस प्रकार हैं :—

(१) अवमूल्यन की नीति की सफलता के लिए अवमूल्यन करने वाले देश में मूल्य स्थिरता आवश्यक है, परन्तु भारतीय रुपये का अवमूल्यन करने से यदि निर्यात को प्रोत्साहन मिलेगा, तो विदेशी माँग को पूरा करने के लिए निर्यात की जाने वाली वस्तुओं का उत्पादन भी काफी मात्रा में बढ़ाने की आवश्यकता होगी। लेकिन तत्काल यह हो जाना सम्भव नहीं प्रतीत होता है। इसके अलावा देश के आयात-व्यापार में कमी करना अव-मूल्यन-नीति का मुख्य उद्देश्य है। परन्तु यह भी सम्भव नहीं प्रतीत होता है। अपने देश में विभिन्न प्रकार के उद्योग-धन्धों को, जोकि देश के विकास में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, चालू रखने, एवं नये उद्योग खोलने के लिए हमें विदेशों से मशीनें, कल-पुर्जे, कच्चा माल विदेशी तकनीशियन- (विशेषज्ञ) तथा इञ्जीनियर की सेवाएँ आदि की विशेष आवश्यकता पड़ेगी, जिसे किसी भी हालत में टाला नहीं जा सकता है। अतः आयात-व्यापार कम होने के बजाय अधिक होने की सम्भावना है जिसके फलस्वरूप, आयातीत वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि अवश्य ही होगी और मूल्य वृद्धि का कुचक्र और अधिक गति-शील हो जायेगा। यह यदि इस मूल्य वृद्धि को नियन्त्रण द्वारा रोक भी लिया जायेगा, तो यह भी उपयुक्त सिद्ध नहीं

होता, क्योंकि मूल्य-नियन्त्रण के लिए सरकारी अधिकारियों का ईमानदार और अनुभवी होना बहुत ही आवश्यक है, जिसका अपने देश में सर्वथा अभाव सा है। इस प्रकार मूल्य-वृद्धि की स्थिरता की सम्भावना कम होने के कारण अवमूल्यन द्वारा वांछित लाभ नहीं प्राप्त हो सकेंगे, और फलस्वरूप आम-जनता की सामान्य कठिनाइयाँ और भी बढ़ जायेंगी।

(२) अवमूल्यन करने वाले देश को उन सभी देशों का, जिनके चलन के सम्बन्ध में मुद्रा का अवमूल्यन किया जाता है, पूर्ण सहयोग प्राप्त होना चाहिए। अवमूल्यन के बाद दूसरे देशों में अवमूल्यन करने वाले देश से निर्यात होने वाली वस्तुओं पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष किसी भी प्रकार का रोक अथवा नियंत्रण नहीं होना चाहिए। इसके अलावा दूसरे देशों को भी अपनी निर्यात वस्तुओं के मूल्य में कमी नहीं करनी चाहिए। विशेषतः उन वस्तुओं के मूल्य में जिनका आयात अवमूल्यन करने वाले देश में किया जाता है। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों को विचार करते हुए इस प्रकार के सहयोग का भारत के लिए पूर्णतः अभाव सा प्रतीत होता है। इस समय सभी देश अपने व्यापार को सन्तुलित करना चाहते हैं। भारत अधिकतर उपभोग्य वस्तुओं का निर्यात एशिया तथा अफ्रीका देशों को करता है। परन्तु ये देश अपना भुगतान सन्तुलन ठीक रखने लिए अपने देश में बाहर से आने वाले सामानों पर लगातार नियंत्रण करते जा रहे हैं। यहाँ तक कि विकसित देश भी आयात नीति में उदारता नहीं बरतते हैं।

(३) भारत अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का सदस्य है। देश की चलन की इकाई संसार के अन्य सभी देशों की चलन की

इकाइयों से सम्बन्धित है। इसलिए रुपये का अवमूल्यन होने पर यह समस्या उत्पन्न होगी कि सामान्य अवमूल्यन किया जाय अथवा किसी विशेष देश की चलन इकाई के सम्बन्ध में। साधारणतया दूसरा ढंग ही अपनाया जाता है। परन्तु ऐसा करने पर प्रत्येक देश के साथ सामाजिक न्याय नहीं हो सकेगा।

(४) अवमूल्यन का प्रभाव अस्थायी होता है। साधारणतः अवमूल्यन के पश्चात् इसका लाभदायक प्रभाव उसी समय तक रहता है, जब तक कि देश तथा विदेशों के लागत मूल्य सम्बन्धी ढाँचे का निर्धारित नयी विदेशी विनिमय दर के साथ समायोजन नहीं हो जाता। ऐसा होने में साधारणतया दो-तीन वर्ष का समय लग जाता है। इस लम्बे अवधि में देश की सरकार को आन्तरिक लागत मूल्य संबन्धी ढांचे को इस प्रकार ठीक कर लेना चाहिए कि देश के भुगतान शेष के असन्तुलन की समस्या हल हो जाय। परन्तु देश की वर्तमान गतिविधि को देखते हुए ऐसा होना सम्भव नहीं होता।

(५) अवमूल्यन की नीति उस समय अधिक सफल सिद्ध होती है, जबकि देश के आयात और निर्यात की मांग अधिक अथवा पूर्णतया मूल्य सापेक्ष होता है। परन्तु अपने देश में इस बात का अभाव है। जहां तक हमारे निर्यात का प्रश्न है, उसके बहुत बढ़ने की भी आशा नहीं है। उदाहरण के लिए भारत का करीब ३० प्रतिशत निर्यात व्यापार जूट और चाय का होता है। १६५८-६५ ई० में चाय के निर्यात की कीमत तो लगभग स्थिर रही है, लेकिन बाहर के देशों में उसकी निर्यात की मात्रा घटी की रही है। आयात घटाकर इतना कम

किया जा चुका है कि अब और घटाने की स्थिति नहीं रही है।

(६) अवमूल्यन की नीति की समानता के लिए पूर्ति की भी मूल्य सापेक्षता महत्वपूर्ण है। अवमूल्यन के बाद निर्यात की मांग में वृद्धि होने पर निर्यात की वस्तुओं की पूर्ति में भी वृद्धि आवश्यक है। यह वर्तमान परिस्थिति में सम्भव नहीं है।

(७) लोगों का अनुमान है कि अवमूल्यन के विषय में ३० प्रतिशत तक आधार पर भारत अपने आयातित माल के लिए ३३२.५ करोड़ रुपये अधिक देगा और उसका निर्यात व्यापार २५२.५ करोड़ रुपये से कम हो जायेगा। इस प्रकार आयात तथा निर्यात-व्यापार की राशि के भुगतान के बाद भारत पर ६३५ करोड़ रुपया प्रति वर्ष ऋण और बढ़ता जायेगा।

(८) भारत को निर्यात के संबन्ध में चीन, जापान हांगकांग और पाकिस्तान के साथ कड़ी होड़ और प्रतिद्विन्दता करनी पड़ेगी। अतः भारत के निर्यात व्यापार के वृद्धि की कम गुंजाइश है।

(९) भारत पर इस समय ३० अरब रुपये का विदेशी ऋण चढ़ा है। यदि भारतीय रुपये का ३० प्रतिशत अवमूल्यन किया गया तो इस ऋण में भी ३० प्रतिशत और वृद्धि हो जायेगी। अब अवमूल्यन ३५.५ प्रतिशत किया गया है तो और भी अधिक विदेशी ऋण चढ़ेगा।

(१०) सन् १९४९ ई० में जब भारत ने अपने रुपये का अवमूल्यन किया उस समय भी यही सोचा गया था कि निर्यात को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिलेगा और आयात कम होगा,

परन्तु परिणाम में पूर्णरूपसे स्थायी सफलता नहीं प्राप्त हुई।

उपसंहार

निष्कर्षतः केवल यही कहा जा सकता है कि भारतीय रुपये की यह अवमूल्यन की नीति आज की परिस्थियों के अनुकूल नहीं है। वास्तव में यह देश की अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ़ और सशक्त करने में असमर्थ है। व्यापार में ईमानदारी, निर्यात-वस्तुओं का प्रतिस्पर्द्धात्मक मूल्य, विदेशी ग्राहकों की सन्तुष्टि आदि से ही निर्यात व्यापार को प्रोत्साहन दिया जा सकेगा। इसके लिए व्यापारियों, व्यापारिक प्रतिष्ठात्रों और निर्याताओं सबका सहयोग आपेक्षित है। इसके अतिरिक्त देश को अपने साधनों की सीमा के अन्दर रहने का संकल्प करना चाहिए और योजनाएं इस प्रकार तैयार करनी चाहिए, जिसमें कम से कम विदेशी मुद्रा की आवश्यकका पड़े। और साथ ही साथ आयात प्रतिस्थापन वस्तुओं के उत्पादन को भी बढ़ावा दिया जाय तभी अवमूल्यन की नीति पूर्ण रूप से सफल हो सकेगी। सरकार इस समय चौथी योजना का प्रारूप प्रस्तुत कर चुकी है, जिसमें पुराना राग ही अलापा गया है। विदेशी ऋण की और अधिक आवश्यकता पड़ेगी क्योंकि हमारी चौथी योजना भी बहुत लम्बी चौड़ी रक्खी गई है और जब तक हम आत्मनिर्भर योजनाएं नहीं बनायेगें तब तक हम अपने कष्टों का अन्त नहीं कर सकेगें। आवश्यकता है कि परिस्थिति को देखते हुए चौथी योजना छोटी हो, जिससे उत्पादन बढ़ सके एवं हम विदेशी सहायता पर अधिक निर्भर न रहें।

परिशिष्ट

परिभाषिक शब्द [Technical Terms]

अधिमूल्यन	Over-valuation
अवमूल्यन	Devaluation
आर्थिक मन्दी	Economic Depression
आयात	Import
औद्योगीकरण	Industrialization
उद्योग-संरक्षण	Protection of Industry
उत्पादकता	Productivity
उत्पादन-व्यय	Production Cost
उपभोक्ता	Consumer
चलन	Currency
नियन्त्रण	Control
निर्यात	Export
पूँजी	Capital
पुर्नमूल्यन	Revaluation
प्रशासन	Administration
मुद्रा-स्फीत	Inflation.
मूल्य-तल	Price-Level
मौद्रिक-नीति	Monetary Policy
विदेशी-मुदा	Foreign Currency
विदशी-सहायता	Foreign Aid
वैदेशिक व्यापार	Foreign Trade
विनिमय दर	Exchange Rate
विनियोजक	Investor
साख	Credit
शोधनाधिक्य	Balance of Payment